श्री राधाकृष्णदास द्वारा

सम्पादित

Date Entered
29 JUN 2005

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का

सचित्र जीवनचरित्र

उनके वात्सल्यभाजन-बन्धु

श्रीराधाकृष्णदास

ने लिखा

"कहैंगे सबही नैन नीर भरि भरि पाछे
प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायँगी।"

—:o:—

(All rights reserved.)

संवत् १९६०

तारा प्रेस, बनारस।

[प्रथम संस्करण १०००] [दाम ॥=)

भाई साहेब !

हम लोगों को छोड़ [illegible] में आप गए कभी भू[illegible]कर स्वप्न में भी न दर्शन दिया ! हाय ! आप के कोमल स्वभाव में ऐसा परिवर्तन हो गया कि सारी मोह ममता आपने छोड़ दी ! कभी यह भी न देखा कि जिन लोगों पर हम इतना स्नेह करते थे उनकी क्या दशा है ? अस्तु कराल काल ने आप को सब भुला दिया, परन्तु हम लोग आप को भूल नहीं सकते इसी लिये आपकी गुणावली को पिरोकर यह माला बना ली है जिससे सदा कुछ शांति लाभ किया करें और ध्यान में आपकी मूर्ति कल्पना करके इसे आपके गले में अर्पण कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

काशी
वसन्त पञ्चमी
सम्वत् १९६०

आप का वात्सल्य-
भाजन
श्रीराधाकृष्णदास

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

जन्म सन् १८५०]　　　　[मृत्यु सन् १८८५

T. P. Works, Benares.

सूचना।

——:o:——

हमारे पास बाबू राधाकृष्णदास रचित नीचे लिखे ग्रन्थ मिलते हैं। काशी के छपे और नाटक, उपन्यास, कविता के ग्रन्थ भी मिल सकते हैं, जिन महाशयों को मँगाना हो मँगा लें। दाम के सिवाय डाक महसूल देना पड़ैगा।

दुःखिनीवाला (नाटक)	~)॥
निःसहाय हिन्दू (उपन्यास)	।)
स्वर्णलता (उपन्यास)	॥।)
मरता क्या न करता (उपन्यास)	=)
महारानी पद्मावती (नाटक)	।)
हिन्दी सामयिक पत्रों का इतिहास	।)
कविवर बिहारी लाल	=)
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र	॥=)
नया संग्रह	३)

मनेजर
स्वदेश वस्तु प्रचारक कम्पनी
नं० २१ बुलानाला स्ट्रीट
बनारस सिटी,

उपक्रम ।

"खड्गविलास" यंत्रालय की ढील से उकताए हुए मित्रों के आग्रह से मैंने पूज्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी के जीवनचरित्र की बातें जो मुझे याद आईं, उन्हें "सरस्वती" पत्रिका द्वारा चार वर्ष हुए प्रकाशित किया था, तब से प्रायः लोगों का आग्रह उसे पुस्तकाकार छापने का होता रहा परन्तु अब तक उसका अवसर न आया। इधर गत कार्तिक मास में "दिल्ली दर्बार चरितावली*" के लेखक जगदीशपुर जिला शाहाबाद निवासी बाबू हरिहरप्रसाद जी काशी आए और उन्होंने अत्यंत ही आग्रह करके अपने साम्हने ही छपने का प्रबन्ध कराया अतएव इसके छपने के मूल कारण उक्त महाशय ही हैं; इस लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ—

इस छोटे ग्रन्थ में जहाँ तक सामिग्री मुझे मिली, मैंने उनका दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। सम्भव है कि बहुतेरी आवश्यक बातें इसमें छूट गई हों, क्योंकि मेरे पास जो कुछ सामिग्री थीं उनमें से अधिकांश "खड्गविलास" यन्त्रालय के स्वामी स्वर्गवासी बाबू रामदीनसिंह जी जीवनी प्रकाश करने की इच्छा से ले गए थे। "सरस्वती" में जो जीवनी छपी थी उसके पीछे और जिन बातों का पता लगा वह इसमें बढ़ा दी गई हैं, आशा है कि इससे हिन्दी और पूज्य भारतेन्दु के प्रेमियों को कुछ आनन्द प्राप्त होगा।

पूज्य भारतेन्दु जी की जीवनी लिखना मुझे उचित न था, इसमें आत्मश्लाघा का दोषी बनना पड़ता है, परन्तु यह सोचकर कि यदि और लोगों की भाँति आलस्य में, वह बातें जो मुझे विदित हैं लिखने से रह गईं और मेरा शरीर भी न रहा तो उनका पता लगना भी दुर्घट हो जायगा और यह लालसा मेरी मन की मन ही में रह जायगी, इस लिये मैंने यह धृष्टता की है आशा है कि सज्जन जन क्षमा करेंगे।

हर्ष की बात है कि हिन्दी हितैषी बाबू रामदीनसिंह जी के योग्य पुत्र बाबू रामरणविजयसिंह का ध्यान अपने पिता की इस इच्छा को पूरी करने की ओर गया है आशा है कि वह अपने पिता की संग्रहीत सामग्रियों से इस जीवनी की पूर्ति करेंगे।

"भारतमित्र" सम्पादक सुहृद्वर बाबू बालमुकुन्द गुप्त भी एक जीवनी लिखने वाले हैं यदि उक्त दोनों जीवनियों मे कुछ भी सहायता मेरी लिखी इस जीवनी से मिलेगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

जनवरी १९०४ } हिन्दी प्रेमियों का दास
काशी } श्रीराधाकृष्णदास

---

* इस ग्रन्थ में भारत सम्राट महाराजाधिराज सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक महोत्सव के उपलक्ष में जो दिल्ली में दर्बार हुआ था उस का वृत्त दिल्ली के इतिहास सहित सरल हिन्दी भाषा मे वर्णित है। उक्त ग्रन्थ बाबू साहब के पास- बाबू गुलाब चन्द्रजी की कोठी, दौलत-गंज-छपरा इस पते से मिलता है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र
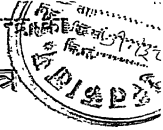
पिता और पूर्व पुरुष।

परमेश्वर नास्तिकों का मुंह बन्द करने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने ही के लिये कभी कभी पृथ्वी पर ऐसे लोगों को जन्माता है जिनकी अद्भुत प्रतिमा देखकर लोग आश्चर्य में आजाते हैं। हमारे चरित्रनायक भी वैसेही एक पुरुषरत्न थे कि जिनके चरित्र में ईश्वर की ईश्वरता का साक्षात प्रमाण मिलता है। ऐसे लोगों के जीवनचरित्र के पढ़ने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि उनका चरित्र लोगों को एक अच्छा रास्ता दिखलाता और संसार में यश कमाने का अच्छा उपदेश देता है।

जगत् प्रसिद्ध कविश्रेष्ठ गिरिधरदास, प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचन्द्र, का जन्म काशी में मिती पौष कृष्ण १५ सं० १८९० को हुआ था और मृत्यु मिती वैशाख सु० ७ सं० १९१७ को। उन्हों ने इस २६ वर्ष ४ महीने और ७ दिन की ऐसी छोटी अवस्था में कितने बड़े काम किए हैं यह देख कर आश्चर्य होता है। हिन्दुस्तान में जिस अवस्था में धनवानों के लड़कों को पूरी तरह पर बात करने का भी ज्ञान नहीं होता और जिस भयानक अवस्था के वर्णन में उचित रूप से कहा गया है कि—

"यौवनं धन सम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥"

उस अवस्था में इस प्रान्त के प्रसिद्ध सेठ हर्षचन्द्र के एकमात्र पुत्र गोपालचन्द्र ने बचपन में ही पितृहीन होकर भी विद्वत्ता और

सच्चरित्रता का ऐसा उदाहरण छोड़ा है कि जिसे देखकर ईश्वर की महिमा स्मरण आती है। इसके पहिले कि हम इनका कुछ चरित्र लिखें, इनके सुप्रसिद्ध वंश का बहुत ही संक्षेप से वर्णन कर देना उचित समझते हैं, जिसमें हमारे पाठकों को इनका और इनके पुत्र हिन्दीप्रेमियों के एकमात्र प्रेमाराध्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पूरा परिचय मिल जाय।

भारतेन्दु जी स्वरचित "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में निज वंश परम्परा यों वर्णन करते हैं:—

" वैश्यअग्र–कुल में प्रगट बालकृष्ण कुल पाल।
ता सुत गिरिधरचरनरत, वर गिरधारीलाल ॥ १ ॥
अमीचंद तिनके तनय, फतेचन्द ता नंद।
हरखचंद जिन के भए, निज कुल सागर चंद ॥ २ ॥
श्री गिरिधर गुरु सेइके, घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब, हरि पद भक्ति दृढाइ ॥ ३ ॥
तिनके सुत गोपाल ससि, प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम गति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास ॥ ४ ॥
मेटि देव देवी सकल, छोड़ि कठिन कुल रीति।
थाप्यो गृह में प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण पद प्रीति ॥ ५ ॥
पारवती की कूख सों, तिन सों प्रगट अमन्द।
गोकुलचन्दाग्रज भयो, भक्त दास हरिचन्द ॥ ६ ॥"

ख वंश वृक्ष ।
रायबालकृष्ण
फ़कीरचन्द
लक्ष्मीराम
दलपतराय
हरिविलास
सूरत सिंह
गिरिधारी लाल
खिरोधर लाल
रूपचन्द
अनूपचन्द
शोभाचन्द
सेठ अमीचन्द
चन्द्र विलास
राजा गोविन्दचन्द
राय रतनचन्द बहादुर
डालचन्द
मोहनचन्द
विशुनचन्द
राय हुकुमचन्द
सीतलचन्द
राजा आनन्दचन्द
पूर्णचन्द
बाबू रायचन्द
गोपीचन्द
नान्हकचन्द

बाबू फतहचन्द्र
बाबू हर्षचन्द्र
यमुना बीबी
राय प्रल्हाद दास
गङ्गा बीबी
श्रीराधाकृष्ण दास
बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरिधरदास
मुकुन्दी बीबी
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
विद्यावती
बाबू गोकुलचन्द्र
गोविन्दी बीबी
राय गोपीकृष्ण
सरस्वती
कृष्णावती
बाबू कृष्णचन्द्र
बाबू वृजचन्द्र
वृजरमनदास
रेवतीरमनदास
वृजजीवन दास
मोहन दास
वृजभूषण दास
जीवनचन्द्र
छोटा बच्चा
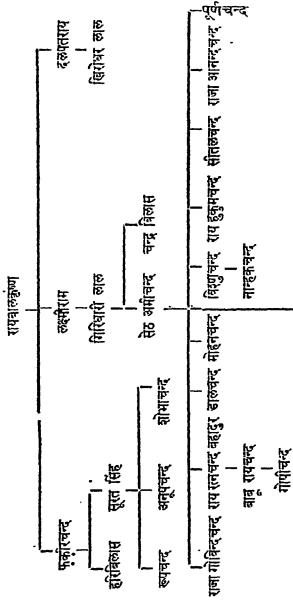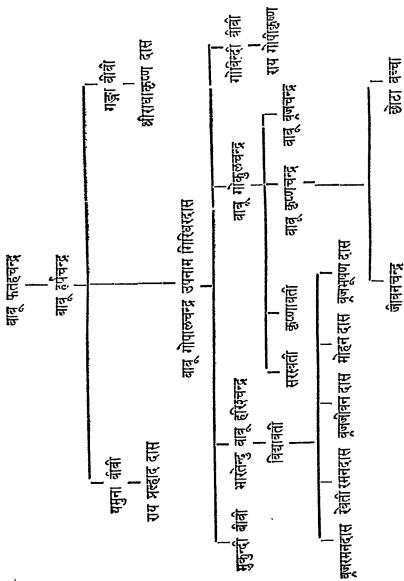
दिल्ली के शाही घराने से इनके प्रतिष्ठित पूर्वजों का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध था। जब शाहजहाँ का बेटा शाह शुजा सन् १६५० के लगभग विशाल बङ्गाल का सूबेदार होकर आया, तो इनके पूर्वज भी उसके साथ दिल्ली छोड़ बङ्गाल में चले आए, और जैसे जैसे मुसलमानी राजधानी बङ्गाल में बदलती गई वैसे वैसे ये लोग भी अपना प्रवासस्थान परिवर्तन करते गए। राजमहल और मुर्शिदाबाद में अब तक इनके पूर्वजों के उच्च प्रासादों के अवशिष्ट चिन्ह पाए जाते हैं। इसी विशाल वंश के सेठ बालकृष्ण के पौत्र तथा सेठ गिरिधारी लाल के पुत्र सेठ अमीचन्द के समय में इस देश में अङ्गरेज़ों का राजत्वकाल प्रारम्भ हुआ। उस समय अङ्गरेज़ों के सहायकों में से ये भी एक प्रधान सहायक थे। उस समय इनका इतना मान था कि इनके नौ बेटों में से तीन को "राजा" और एक को "रायबहादुर" की पदवी प्राप्त थी। इन पुत्रों में से वंश केवल बाबू फ़तहचन्द्र का चला। सेठ अमीचन्द्र का वृत्तान्त इतिहासों में इस प्रकार से प्रसिद्ध है।

——:o:——

सेठ अमीचन्द।

सेठ अमीचन्द का चार लाख रुपया कलकत्ते में लुट गया था, और भी बहुत कुछ हानि हो गई थी; परन्तु नव्वाब की ओर से उसकी कुछ भी रक्षा न हुई। निदान यों ही देश को दुखित देख जब लोगों ने अङ्गरेज़ों की शरण ली तो ये भी उनमें एक प्रधान पुरुष थे। इनसे अङ्गरेज़ों से यह दृढ़ प्रतिज्ञा हो गई थी कि सिराजुद्दौला के कोप से जो द्रव्य प्राप्त होगा उसमें से पांच रुपया सैकड़ा तुम्हें मिलेगा, और दो प्रतिज्ञापत्र लिखे गए। लाल काग़ज़ पर जो लिखा गया उस पर सेठ अमीचन्द को ५) रुपया सैकड़ा देने को लिखा गया था, परन्तु सफ़ेद काग़ज़ पर जो लिखा गया उस पर इनका नाम तक न लिखा। जब हस्ताक्षर होने के हेतु कौंसिल में ये पत्र उपस्थित हुए तो 'एडमिरल' ने लाल काग़ज़ पर हस्ताक्षर करना सर्वथा

अस्वीकार किया पर कौंसिल वालों ने उनका हस्ताक्षर बना लिया। बङ्गाल विजय के पश्चात् जब ख़ज़ाना सहेजा गया तो डेढ़ करोड़ रुपया निकला। सेठ अमीचन्द ने तीस पैंतीस लाख रुपया मिलने का हिसाब जोड़ रक्खा था। जब प्रतिज्ञापत्र पढ़ा गया और इनका नाम तक न निकला तो इन्हों ने उस षड़चक्र से घबड़ा कर कहा "साहब, वह लाल काग़ज़ पर था"। लार्ड क्लाइव ने उत्तर दिया "वह आपको सब्ज़बाग़ दिखाने को था। असिल यही सफ़ेद है"। सेठ अमीचन्द इस वाक्य के व्याघात से मूर्छित होकर गिर पड़े। लोग उन्हें पालकी में डाल कर घर लाए। इसी प्रबल पीड़ा से डेढ़ वर्ष के पश्चात् वे परमधाम सिधारे।

राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि "अफ़सोस है क्लाइव ऐसे आदमी से ऐसी बात ज़हूर में आवे; पर क्या करें, ईश्वर को मञ्ज़ूर है कि आदमी का कोई काम बेऐब न रहे। इस मुल्क में अँग्रेज़ी अमलदारी की सचाई में, जो मानो धोबी की धोई हुई सफ़ेद चादर रही है, केवल उसी अमीचन्द ने उसमें एक छोटा सा धब्बा लगा दिया है *"।

सेठ अमीचन्द उस समय कलकत्ते के प्रधान महाजनों में थे, इनका इतिहास बाबू अक्षयकुमार मैत्र ने "सिराजुद्दौला" नामक ग्रन्थ में लिखा है हम उसी को यहाँ उद्धृत करते हैं।

---

* मीर जाफ़र, अमीचन्द (अमियचन्द्र) ("Amen of wast wealth") और खोजा वज़ीद ये तीन जन थे कि जिन की सहायता से पलासी युद्ध में अँगरेज विजयी हुए। मीरजाफर (सेनापति) को नवाब बनाने की लालच दी गई और सेठ अमीचन्द को उनका बहुत रुपया, जिसे सिराजुद्दौला ने अन्याय से ले लिया था, युद्ध जीतने और कोष पाने पर देने का वादा किया गया। पीछे रुपया देख क्लाइव लोभ में आगया। इसी लोभ ने हेष्टिङ्गस् का नाम चिरस्मरणीय बनाया और इसीने यह हत्या करा कल्याण के लिये उनके और शुभ्र अँगरेजी राज्य के नाम में कलङ्क लगा दिया। कितने अङ्गरेज़ इतिहासलेखकों ने यद्यपि एक स्वजाति की करनी को बड़ी बड़ी बातें बना गोपन रखना चाहा है तथापि कितनें न्यायशीलों ने क्लाइव को साफ़ दोषी ठहराया है। अधर्म सभी स्थल और सभी समय अधर्म है। राज सेक्रेटरी T. Talboys Wheeler कहते हैं;—But the action of Clive, although it did not put a penny in his pocket, has been condemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman"

" हिन्दू वणिकों में उमाचरण का नाम अँग्रेजों के इतिहास में उमीचाँद (अमीचन्द) कह कर प्रसिद्ध है। अँग्रेज़ ऐतिहासिकों ने इन्हें लोक समाज में धूर्तता की मूर्ति कह कर प्रसिद्ध करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी है और लार्ड मेकाले ने तो इन्हें "धूर्त बङ्गाली" कहने में कुछ भी आगा पीछा नहीं किया है, परन्तु ये बङ्गाली नहीं थे, ये पश्चिम देशीय हिन्दू वणिक थे। केवल बङ्गाल बिहार में वाणिज्य करने के लिये बङ्गाल में रहते थे। इन्हें केवल वणिक कहने से इनका पूरा परिचय नहीं होता। इनकी नाना विधि सामानों से सुसज्जित राजपुरी, इन का कुसुमदाम सज्जित प्रसिद्ध पुष्पोद्यान (बाग़) इनका मणिमाणिक्य से भरा इतिहास में प्रसिद्ध राज भण्डार, इनका हथियार बन्द सैनिकों से घिरा हुआ सुन्दर सिंहद्वार देख कर दूसरे की कौन कहे अँग्रेज़ लोग भी इन्हें एक बड़ा राजा कह कर मानते थे * सेठों में जैसे जगतसेठ थे वणिकों में वैसे ही इनका मान्य और पद गौरव नवाब के दर्बार में था। अँग्रेज़ वणिक जब विपद में पड़ते तभी इन के शरणापन्न होते थे, और कई बार केवल इन्हीं की कृपा से इन की लज्जा रक्षा होने का कुछ कुछ प्रमाण पाया जाता है। †

अँग्रेज़ लोग केवल इन्हीं की सहायता पाकर बङ्गाल देश में अपना वाणिज्य फैला सके थे। इन्हीं की सहायता से गाँव गाँव में अँग्रेज़ लोग दादनी देकर रुई और कपड़े लेकर बहुत कुछ धन उपार्जन करते थे। यह सुविधा न मिलती तो इस अपरिचित विदेश में अँग्रज़ों को अपनी शक्ति फैलाने का अवसर मिलता कि नहीं इस में सन्देह होता है। परन्तु देशी लोगों के साथ जान

---

* The extent of his habitation, divided into various departments, the number of his servants continually employed on various occupations, and a retinue of armed men in constant pay, resembled more the state of a prince, than the condition of a merchant—Orme Vol. II. 50.

† He had acquired so much influence with the Bengal Government, that the Presidency, in times of difficulty, used to employ his mediation with the Nowab—Orme Vol. II. 50.

पहिचान हो जाने पर दैव कोप से अँग्रेज़ लोग इनकी उपेक्षा करने लगे। जिस समय सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठे उस समय अँग्रेज़ लोग अमीचन्द का उतना विश्वास नहीं करते थे । इन दोनों के मन में जो मैल आगई थी वह धीरे धीरे बहुत ही दृढ हो गई ।

उस समय इस देश के लोगों की प्रकृति ऐसी सरल थी कि वे अँग्रेज़ों का अध्यवसाय, अकुतोभयता और विद्या बुद्धि देख कर बेखटके विश्वास करके उनके पक्षपाती हो गए थे। इसी से अँग्रेज़ों का रास्ता इस देश में सुगम हो गया था।

अँग्रेज़ों के उद्धतपने से चिढ़कर नवाब सिराजुद्दौला ने यद्यपि यह निश्चय कर लिया था कि एक न एक दिन इन को दबाने का उपाय करना होगा, परन्तु एक बेर और दूत भेज कर समझाना उचित जान कर चर देश के राजा रायरामसिंह पर दूत भेजने का भार दिया। अँग्रेज़ लोग नवाब से ऐसे सशङ्कित थे कि इन का कोई मनुष्य कलकत्ता में घुसने नहीं पाता था, इस लिये रायरामसिंह ने अपने भाई को फेरी वाले के छद्मवेष में एक डोंगी पर बैठा कर कलकत्ता भेजा वह सेठ अमीचन्द के यहाँ ठहरे और उन्हीं के द्वारा अँग्रेज़ों के पास नवाब का संदेसा लेकर उपस्थित हुए, पर अँग्रेज़ों ने उन की कुछ बात न मानकर बड़े अनादर के साथ निकाल दिया। यद्यपि बाहरी बनाव सेठ अमीचन्द का अँग्रेजों से था, परन्तु भीतर से अँग्रेज़ लोग इन से बहुत ही चिढ़े हुए थे। इस घटना के विषय में उन लोगों ने लिखा है कि "एक राज दूत आया तो था पर वह नवाब सिराजुद्दौला का भेजा दूत है यह हम लोग कैसे समझ सकते थे? वह एक साधारण फेरी वाले के छद्मवेष में आ कर हम लोगों के सदा के शत्रु अमीचन्द के यहाँ क्यों ठहरा था। अमीचन्द के साथ हम लोगों का झगड़ा था इस से हम लोगों ने समझा था कि अपनी बात बढ़ाने के लिये ही इन्हों ने यह कौशल जाल फैलाया है, इसी लिये राज दूत की उपेक्षा की गई थी, जो कहीं तनिक भी हम लोग जानते कि स्वयं नवाब सिराजुद्दौला ने दूत भेजा है तो हम लोग क्या पागल थे कि उसका ऐसा अपमान करते?" निदान अँग्रेज़ लोग हर एक बातों में सब दोष इन पर डाल कर अपने बचाव का रास्ता निकाल लेते थे,

परन्तु वास्तविक बात और ही थी, यदि उन्हें यह निश्चय था कि यह कौशल जाल अमीचन्द का है तो क़ासिम बाज़ार में वाट्स साहब को क्यों लिखते कि वहाँ सावधान रहें और देखें कि दूत को निकाल देने का क्या फल नवाब दर्बार में होता है ? *

अँग्रेज़ों के इन उद्धत व्यवहारों से चिढ़कर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढ़ाई की। अमीचन्द के मित्र राजा राय रामसिंह ने गुप्त पत्र लिखकर एक दूत के हाथ अमीचन्द के पास भेजा कि वह तुरन्त कलकत्ते से हट जाँय जिसमें उन पर कोई आपत्ति न आवे परन्तु वह पत्र बीच ही में दूत को धमकाकर अँग्रेज़ों ने ले लिया, इसका कुछ भी समाचार अमीचन्द को न विदित हुआ, अँग्रेज़ों ने तुरन्त सेना भेजकर इन्हें बन्दी किया और कारागार को ले चले सारे नगर के लोग हाहाकार करने लगे।

"अमीचन्द के यहाँ उनके एक सम्बन्धी हज़ारीमल्ल कार्याध्यक्ष थे, उन्हों ने डरकर धन, रत्न और परिवार के लोगों को लेकर भागने का विचार किया, अँग्रेज़ों से यह न देखा गया, श्रेणी की श्रेणी अँग्रेज़ी सेना आने और अमीचन्द के घर को घेरने लगी। इनका जमादार एक सद्वंश जात क्षत्रिय था, वह इनके नौकर बरक़न्दाज़ों और और नौकरों को इकट्ठे करके रक्षा का उपाय करने लगा। फिरङ्गियों ने आकर सिंहद्वार पर हाथावाहीं आरम्भ की लहू की नदी बहने लगी। अन्त में इनके बर्क़न्दाज़ न ठहर सके एक एक करके बहुतेरे भूनलशायी हो गए, जहाँ तक मनुष्य का साध्य था इन लोगों ने किया। फिरङ्गियों की सेना महा कोलाहल के साथ ज़नाने में घुसने लगी, अब तो जमादार का रक्त उबलने लगा। हैं! जिस आर्यमहिला के अन्तःपुर में भगवान सूर्य-

---

* The Governor returning next day summoned a council, of which the majority being prepossessed against Omichand concluded that the messenger was an engine prepared by himself to alarm them and restore his importance.................................. but letters were despatched to Mr. Watts, instructing him to guard against and evil consequences from this proceeding—ORME Vol. II. 54.

नारायण अत्यंत आदर के साथ प्रवेश करते हैं वहाँ म्लेच्छ सेना का पदस्पर्श होगा ? जिस मालिक के परिवार के निष्कलङ्क कुल को, अवगुन्ठनवती कुल कामिनियों को पर पुरुप की छाया भी नहीं छू सकी है उनका पवित्र देह म्लेच्छों के हाथ से कलङ्कित होगा ? इससे तो हिन्दू बालाओं को मौत की गोद ही कोमल फूल की सेज है; यह प्राचीन हिन्दू गौरव-नीति तुरन्त जमादार के हृदय में उदय हुई, उसने कुछ भी आगा पीछा न सोचकर चट एक बड़ी चिता जला दी और फिर क्या किया—फिर एक एक करके प्रभु परिवार की १३ स्त्रियों का सिर धड़ से अलग कर चिता में डालता गया और अन्त में उसी सती-शोणित-से भरी तलवार को अपने कलेजे में घुसाकर आप भी वहीं लोट गया ! अनुकूल वायु पाकर उस चिता ज्वाल ने चारो ओर अपनी लोल जिह्वा से लपलपाकर उस राजपुरी को सिंहद्वार तक अपने पेट में डाल लिया ! फिरङ्गी लोग उठाकर जमादार को बाहर लाए, परन्तु घर के भीतर न घुस सके, अमीचन्द का इन्द्र भवन स्मशान भस्म से भर गया ! केवल इस शोक समाचार को आमरण कीर्तन करने के लिये ही उस बूढ़े जमादारकी प्राण वायु न निकली ।" *

अँग्रेज़ों की अन्त में हार हुई । नवाब की सेना ने कलकत्ता पर अधिकार किया । सेनापति हालवेल साहब अँग्रेज़ों के क़िला की रक्षा के उपाय करने लगे पर कोई उपाय चलता न देखकर अन्त में फिर अँग्रेज़ों के गाढे समय के मीत अमीचन्द के शरण में गए; बहुत कुछ रोए गाए । दयार्द्र चित्त अमीचन्द ने अँग्रेज़ों के दुष्ट व्यवहार का विचार न करके उन्हें आश्वासन दिया और नवाब के सेनापति राजा मानिकचन्द के नाम पत्र लिखकर हालवेल साहब को दिया । पत्र में लिखा कि "बस अब बहुत शिक्षा हो चुकी,

---

* The head of the peons, who was an Indian of a high caste, set fire to this house, and in order to save the women of the family from the dishonour of being exposed to strangers, entered their apartments, and killed it is said, thirteen of them with his own hand ; after which he stabbed himself but contrary to his intention not mortally—ORME iv 60.

अब जो आज्ञा नवाब देंगे अंग्रेज़ लोग वहीं करेंगे" आदि॥ हालवेल साहब ने उस पत्र को क़िले के बाहर गिरा दिया किसी ने उसे ले लिया पर कुछ उत्तर न आया (कदाचित् राजा तक नहीं पहुँचा) संध्या को अंग्रेज़ों की सेना ने पश्चिम का फाटक खोल दिया नवाब की सेना क़िले में घुस आई और बिना युद्ध जितने अंग्रेज़ थे सब पकड़े गए। नवाब ने क़िले में दर्बार किया अमीचन्द और कृष्णवल्लभ को ढूँढने की आज्ञा दी। दोनों सामने लाए गए। नवाब ने कुछ क्रोध प्रकाश न करके दोनों का यथोचित आदर किया और बैठाया।

जो अँग्रेज़ बन्दी हुए थे वह एक कोठरी में रात को रक्खे गए १४६ अँग्रेज़ थे और १८ फुट की कोठरी में रक्खे गए थे। इन में से १२३ रात भर में दम घुट कर मर गए। यह घटना अँग्रेज़ों में अन्धकूप हत्या के नाम से प्रसिद्ध है इस कोठरी का नाम ब्लैक होल (Black-hole) प्रसिद्ध है। यह सब बात सिवाय हालवेल साहब के किसी अँग्रेज़ या मुसलमान ऐतिहासिक ने नहीं लिखा है इस लिये अक्षय बाबू इसकी सत्यता में बड़ा सन्देह करते हैं। हालवेल साहब अनुमान करते हैं कि जो निर्दय व्यवहार अमीचन्द के साथ किया गया था उसी के बदला लेने के लिये उन्हों ने राजा मानिकचन्द से कहकर अँग्रेज़ों की यह दुर्गति कराई थी, परन्तु धन, कुटुम्ब सब नाश होने पर भी जो सिफ़ारशी चिट्ठी अमीचन्द ने राजा मानिकचन्द के नाम लिख दी थी उसकी बात हालवेल साहब भूल गए! * परन्तु अमीचन्द के साथ जो अन्याय बर्ताव किया गया था उसे हालवेल को भी मानना पड़ा है †।

---

* Halwell's India tracts page 330.

† But that the hard treatment, I met with, may truly be attributed in a great measure to Omichand's suggestion and insinuations I am well assured from the whole of his subsequent conduct, and this further confirmed me in the three gentlemen selected to be my companions, against each of whom he had conceived particular resentment and you know Omichand can never forgive. Halwell's letter.

हारने पर भी अँग्रेज़ों ने कलकत्ता की आशा नहीं छोड़ी। पलता में डेरा डाला। मद्रास से सहायता माँगी। वहाँ से सहायता आने का समाचार मिला। इधर सिराजुद्दौला ने भी फिर शान्तरूप धारण किया। जहाज़ पर कौन्सिल बैठी, उसी समय आरमनी वणिक के द्वारा अमीचन्द का पत्र अँग्रेज़ों को मिला जिसमें लिखा था "मैं जैसा सदा से था वैसा ही अँग्रेज़ों का भला चाहने वाला अब भी हूं। आप लोग राजा राज वल्लभ, राजा मानिकचन्द, जगतसेठ, ख्वाजा वजीद आदि जिससे पत्र व्यवहार करना चाहें उसका मैं प्रबन्ध कर दूँगा। और आप के पास उत्तर ला दूँगा।" * अँग्रेज़ लोग इतिहास लिखने के समय अमीचन्द के सिर चाहे जैसी कटुक्ति करें वा दोषी ठहरावें परन्तु ऐसे कठिन समयों में उनकी सहायता बड़े हर्ष से लेते रहे हैं और केवल सन्देह ही सन्देह पर अपना काम निकल जाने पर उनके साथ असद्व्यवहार करते रहे हैं। यदि इनकी सहायता न मिलती तो नवाब दर्बार या राजा मानिकचन्द्र प्रभृति तक उनके पत्र तक नहीं पहुँच सकते थे। जो राजा मानिकचन्द अँग्रेज़ों के खून के प्यासे थे वह केवल अमीचन्द के उद्योग से अँग्रेज़ों का दम भरने लगे। †

जगतसेठ और अमीचन्द हर एक प्रकार से अँग्रेज़ों की मङ्गल कामना नवाब दर्बार में करने लगे। अमीचन्द ने लिखा कि "नवाब के डर से कोई बोल नहीं सकता है पर ख्वाजा वज़ीद आदि प्रसिद्ध सौदागर लोग अँग्रेज़ों के फिर आने के लिये उत्सुक हैं।" ‡

निदान फिर अँग्रेज़ों का कलकत्ते में प्रवेश हुआ। अब नवाब की इच्छा अँग्रेज़ों से सन्धि कर लेने की हुई। वह स्वयँ कलक-

---

* Consultations on board the Rhomia Schooner; Fulta August 22, 1756.

† Omichand and Manik Chand were at this time in friendly correspondence with the English they negotiated at this time between the Nawab and the English understanding how to run with the bore and keep with the hound. Read Long.

‡ Omichand writes from Chunsura that Coja Wafid and other merchants would be glad to see the English return were it not for the fear of the Nabab. Revd Long.

त्ता आए और अमीचन्द के बाग़ में दर्बार हुआ। अंग्रेज़ों के दो प्रतिनिधि आए और सन्धि की बातें निश्चित हुईं।* परन्तु कुचक्रियों ने अंग्रेज़ों को भड़का दिया, अनायास नगर को अंग्रेज़ों की तोप छूटने लगी। नवाब पहिले तो घबड़ाए पर अन्त में अपने मन्त्रियों तथा सेनापति मीर जाफ़र की चाल समझ गए। ऐसे विश्वासघाती लोगों के भरोसे अंग्रेज़ों से लड़ना उचित न समझ कर वहाँ से पीछे लौट आए और दूसरे स्थान पर डेरा डालकर अंग्रेज़ों से सन्धि की बात करने लगे। अन्त में सन्धि हो गई। इस सन्धि के द्वारा वाणिज्य का अधिकार मिला, कलकत्ता में क़िला बनाने और टेकसाल खोलने की आज्ञा मिली और कलकत्ता की लूट में जो हानि अंग्रेज़ों की हुई थी वह नवाब ने देना स्वीकार किया।

सन्धि के विरुद्ध सिराजुद्दौला के आदेश के विपरीत अंग्रेज़ों ने फ़रासीसियों के क़िला चन्दननगर पर चढ़ाई की। एक तो फ़रासीसी भी दृढ़ थे दूसरे महाराज नन्दकुमार भारी सेना लिए पास ही डेरा डाले थे, सामने पहुँच कर अंग्रेज़ों को महा कठिनता हुई परन्तु उस समय भी सेठ अमीचन्द ही काम आए। उन्हों ने जाकर नन्दकुमार को समझाया और वह वहाँ से हट गए। अंग्रेज़ों की जय हुई।†

सिराजुद्दौला अंग्रेज़ों की इस धृष्टता पर बहुत ही चिढ़ गए। फिर अंग्रेज़ों को दण्ड देने के लिये तय्यारिएँ होने लगीं, परन्तु इस समय तक सारा देश सिराजुद्दौला के अत्याचार से दुखित था, नवाब के सभी मन्त्री विरुद्ध हो रहे थे। गुप्त मन्त्रणा होकर

---

* February 4, 1757 at seven in the evening the Subah gave them audience in Omichand's garden, where he affected to appear in great state, attended by the best looking men amongst his Officers, hoping to intimate them by so warlike an assembly.

Stratton's Relections.

† Nuncoomer had been bought by Omichund for this English and on their approach the troops of Girajuddowlah were with drawn from Chandannagar. Thomson's History of the British Empire. Vol. i. p. 223.

एक गुप्त सन्धिपत्र लिखा गया। इसमें ईष्ट इण्डिया कम्पनी को एक करोड़, कलकत्ते के अँग्रेज़ और आरमनी वणिकों को ७० लाख और सेठ अमीचन्द को ३० लाख रुपया मिलने की बात थी इनके सिवाय और जिनको जो मिलना था वह अलग फ़र्द पर लिखा गया। सन्धि पत्र का मसौदा भेजने के समय वाटसन साहब ने लिखा था कि 'अमीचन्द जो चाहते हैं उसको देने में आगा पीछा करने से काम न बनैगा वह सहज मनुष्य नहीं है सब भेद नवाब से खोल देगा तो कोई काम भी न होगा।' बस इसी पर अँग्रेज़ लोग अमीचन्द से चिढ़ गए, और उनके सारे उपकारों को भुलाकर जाली सन्धि पत्र बनाया और अमीचन्द को धोखा दिया। पलासी की लड़ाई, अँग्रेज़ों की विजय और सेठ अमीचन्द को प्रतारित करने का इतिवृत्त इतिहासों में प्रसिद्ध ही है। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये अँग्रेज़ ऐतिहासिकों ने सारा दोष अमीचन्द पर थोपकर यथेष्ट गालि प्रदान की उदारता दिखलाई है परन्तु विचार कर देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये आदि से अन्त तक अँग्रेज़ों के सहायक रहे और उनके हाथ से अनेक अन्याय बर्ताव होने पर भी उनके हित साधन से मुँह न मोड़ा और अँग्रेज़ लोग केवल सन्देह कर करके सदा इनका अनिष्ट करते रहे, परन्तु यह सन्देह केवल अपने को दोष मुक्त करने के लिये था वास्तव में इनके भरोसे और विश्वास पर ही इनका सब काम चलता था। क़सम खाकर मीर जाफ़र ने सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किया परन्तु अँग्रेज़ों को विश्वास नहीं हुआ, जब जगतसेठ और सेठ अमीचन्द ने ज़मानत किया तब अँग्रेज़ों को विश्वास हुआ *

---:o:---

बाबू फ़तह चन्द्र ।

सेठ अमीचन्द के पुत्र सुयोग्य सेठ फ़तहचन्द इस घटना से अत्यन्त उदास होकर काशी चले आए। इनका विवाह काशी के परम

* "ज़ामिन उसके वही दोनों महाजनान मज़कूर हुए" मुताख़रीन का उर्दू अनुवाद

प्रसिद्ध नगरसेठ गोकुलचन्द साहू की कन्यासे हुआ। सेठ गोकुलचन्द के पूर्वजों ने काशी के वर्तमान राज्यवंश को काशी का राज्य, मीर रुस्तमअली को पदच्युत कराके, अवध के नव्वाब से प्राप्त कराने में बहुत कुछ उद्योग किया था और तभी से वह उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक "नौपति" की पदवी प्राप्त हुई।

जिन नौ महाजनों ने उस समय काशीराज के मूल पुरुष राजा मनसाराम को राज्य दिलाने में सर्व प्रकार सहायता दी थी, उन्हें नौपति की उपाधि दी गई थी। यह "नौपति" पदवी अब तक प्रसिद्ध है, परन्तु अब उन नवों वंशों में केवल इसी एक वंश का पता लगता है। और उसी समय से इनके यहाँ विवाहादि शुभ कर्म्मों, तथा शोकसमय शोकसम्मिलन तथा पगड़ी बँधवाने के हेतु, स्वयम् काशीराज उपस्थित होते हैं। यह मान इस वंश को अब तक प्रतिष्ठापूर्वक प्राप्त है। सेठ गोकुलचन्द के और कोई सन्तान न होने के कारण बाबू फ़तहचन्द उनके भी उत्तराधिकारी हुए *।

फ़ारसी में एक ग्रन्थ ता: २८ सफ़र सन् १२५४ हिज्री का लिखा है जिस में गवर्नरजेनरल की ओर से प्रधान राजा महाराजा और रईसों को जैसे काग़ज़ और जिस प्रशस्ति से पत्र लिखा जाता था उस का संग्रह है उस में इनकी प्रशस्ति यों लिखी है।

بابو فتح چند ساهو-بابوصاحب مهربان دوستان سلامت
خاتمه-کاغذ افشان مهر خورد

---

* ये हनुमान जी के बड़े भक्त थे। प्रति मङ्गलवार को काशी भदैनी हनुमानघाट वाले बड़े हनुमान जी के दर्शन को जाया करते थे। काशी में बड़े हनुमान जी का मन्दिर परम प्राचीन और प्रसिद्ध है। यहाँ केवल एक विशाल प्रस्तरमूर्त्ति हनुमान जी की है। एक दिन इन्हें जो प्रसाद में माला मिली वह पहिरे हुए घर चले आए। यहाँ आकर जो माला उतारी तो उस में से एक हनुमान जी की स्वर्णप्रतिमा छोटी सी अंगुष्ठ प्रमाण गिर पड़ी उसी समय से इस प्रतिमा की सेवा बड़ी भक्ति से होने लगी और अब तक इस वंश में कुलदेव यही महावीर जी हैं। यह मूर्ति साधारण हनुमान जी की भांति नहीं है, वरञ्च बिलकुल वानराकृति है और एक हाथ में लड्डू लिए हुए हैं।

अर्थात् आदि-बाबू साहब मेहरबान दोस्तान सलामत-अन्त-विशेष क्या लिखा जाय-काग़ज़ मोनहलं छिड़काव का छोटी मोहर—

बाबू फ़तहचन्द ने अङ्गरेजों को राज्यादि के प्रबन्ध करने में बहुत कुछ सहायता दी थी। सुप्रसिद्ध "दवामी बन्दोबस्त" के समय डङ्कन साहब ने इनकी सहायता का पूर्ण धन्यवाद दिया है। इनके काशी आ बसने के कुछ काल उपरान्त उनके बड़े भाई राय रत्नचन्द्र बहादुर भी मुर्शिदाबाद से यहाँ ही चले आए। उनके साथ डङ्का, निशान, सन्तरी का पहरा, माही मरातिब नक़ीब आदि रियासत के पूरे ठाठ थे।

राय रत्नचन्द बहादुर ने रामकटोरेवाले बाग़ में आकर निवास किया। वहाँ इनके श्रीठाकुर जी, जिनका नाम श्री लाल जी है, अब तक वर्तमान हैं। यहीं बाग़ काशी जी में इस वंश का पहिला स्थान समझा जाता है तथा अब तक प्रत्येक विवाह और पुत्रोत्सव के पीछे डीह डीहवार (गृह देवता) की पूजा यहीं होती है। प्रतीति होता है कि ये उस समय तक श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी थे, क्योंकि ठाकुर जी की मूर्ति तथा सामने गरुड़स्तम्भ और मन्दिर के ऊपर चक्रस्थापन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है। इस वंश में "नक़ीब' की प्रथा बाबू गोपालचन्द तक थी। बाबू फ़तहचन्द का व्यवहार देन लेन का था।

——:*:——

बाबू हर्षचन्द्र।

बाबू फ़तहचन्द के एकमात्र पुत्र बाबू हर्षचन्द हुए। ये काशी में काले हर्षचन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके प्रशंसनीय गुणानुवाद अब तक साधारण जन तथा स्त्रियें ग्राम्यगीतों में गाया करती हैं।

बाबू हर्षचन्द के बाल्यकालही में इनके पूजनीय पिता ने परलोक प्राप्त किया। लोगोंने इनके उमङ्ग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हें राय रत्नचन्द बहादुर से लड़ा दिया। परन्तु ज्यों ही

इन्होंने धूर्त्तों की धूर्त्तता समझी, चट पितृव्य के पावों पर जा गिरे और अपराध क्षमा कराकर प्रेमपल्लव को प्रवर्धित किया। राय रत्नचन्द्र के बेटे बाबू रायचन्द्र निस्सन्तान मरे। इससे उन की भी सम्पूर्ण सम्पत्ति के उत्तराधिकारी ये ही हुए।

इनका सम्मान काशी में कैसा था इसी से समझ लीजिए कि, सन् १८४२ में गवर्मेण्ट ने आज्ञा दी कि काशी की प्राचीन तौल की पन्सेरियाँ उठा कर अँग्रेज़ी पन्सेरी जारी हो। काशी के लोग बिगड़ गए और हरताल कर दी; तीन दिन तक हरताल रही; अन्त में उस समय के प्रसिद्ध कमिश्नर गबिन्स साहब ने बाबू हर्षचन्द्र (सरपञ्च), बाबू जानकीदास और बाबू हरीदास साहू को पञ्च माना। काशी के लोगों ने भी इसे स्वीकार किया। बाग़ सुन्दरदास में बड़ी भारी पञ्चायत हुई और अन्त में यही फ़ैसला हुआ कि तिलोचन आदि की पन्सेरियाँ ज्यों की त्यों ही जारी रहें। गबिन्स साहब भी इससे सम्मत हुए और नगर मे जय जयकार होगया। इस बात के देखनेवाले अब तक जीवित हैं कि जिस समय पुरानी पन्सेरियों के जारी रहने की आज्ञा लेकर उक्त तीनो महाशय हाथी पर सवार होकर चले, बीच में बाबू हर्षचन्द्र बैठे थे, मोरछल होता था बाजे बजते थे, सारे शहर की खिलक़त साथ थी और स्त्रियें खिड़कियों से पुष्पवर्षा करती थीं, तथा इस सवारी को लोगों ने बड़ी शोभा के साथ नगर में घुमाया था।

बुढ़वामंगल के प्रसिद्ध मेले को उन्नति देने वाले यही थे। पहिले लोग वर्ष के अन्तिम मंगल को जिसे बूढ़ा मंगल कहते थे, दुर्गाजी के दर्शनों को नाव पर सवार हो कर जाया करते थे। धीरे धीरे उन नावों पर नाच भी कराने लगे और अन्त में बाबू हर्षचन्द्र तथा काशीराज के परामर्शानुसार बुढ़वामंगल का वर्तमान रूप हुआ और मेला चार दिन तक रहने लगा। मैंने कई बेर काशीराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर को भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से कहते सुना है कि इस मेले का दूलह तो तुम्हारा ही वंश है। इन के यहाँ बुढ़वामङ्गल का कच्छा बड़ी ही तैयारी के साथ पटता था और बड़े ही मर्यादापूर्वक प्रबन्ध होता था। बिरादरी में नाई का नेवता फिरता था और सब लोग गुलाबी पगड़ी और दुपट्टे तथा

लड़कों को गुलाबी टोपी दुपट्टे पहिना कर ले जाते थे । नौकर आदि भी गुलाबी ही पगड़ी दुपट्टे पहिनते थे । जिन के पास न होता उन को यहाँ से मिलता । गंगा जी के पार रेत में हलवाईखाना बैठ जाता और चारो दिन वहीं बिरादरी की जेवनार होती । काशीराज हर साल मोरपंखी पर सवार हो इनके कच्छे की शोभा देखने आते । यह प्रथा ठीक इसी रीति पर बाबू गोपालचन्द्र के समय तक जारी रही ।

ये काशिराज के महाजन थे । और बहुतेरे प्रबन्ध उस रियासत के इन के सुपुर्द थे । राज्य की अशर्फियें इन के यहाँ रहती थीं और उनकी अगोरवाई मिलती थी । काशिराज इन्हें बहुत ही मानते थे, राजकीय कामों में प्रायः इनकी सलाह लिया करते थे ।

बुढ़वा मंगल की भाँति होली का उत्सव भी धूम धाम से होता और बिरादरी की जेवनार, महफ़िल होती । वर्ष में अपने तथा बाबू गोपालचन्द्र के जन्मदिवस को ये महफ़िल जेवनार करते ।

बिरादरी में इनका ऐसा मान्य था कि लोग बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिकों के रहते भी इन्हें अपना चौधरी मानते थे और यह प्रतिष्ठा इस वंश को आज तक प्राप्त है ।

चौखम्भास्थित अपने प्रसिद्ध भवन में इन्हों ने ही सुन्दर दीवानख़ाना बनवाया था । सुनते हैं कुछ ऐसा विवाद उस समय उपस्थित हो गया था कि जिसके कारण इस बड़े दीवानख़ाने की एक मंज़िल इन्हों ने एक रात्रि में तैयार कराई थी ।

उस समय इनकी सवारी प्रसिद्ध थी । जब ये घर के बाहर कहीं जाते, बिना जामा और पगड़ी पहिरे न जाते, तामजाम पर सवार होकर जाते, नक़ीब बोलता जाता । आसा, बल्लम, छड़ी, तलवार, बन्दूक़ आदि बाँधे पचास साठ सिपाही साथ में होते । यह प्रथा कुछ कुछ बाबू गोपालचन्द्र तक थी ।

ये गोस्वामी श्री गिरिधर जी महाराज के शिष्य हुए । श्री गिरिधर जी महाराज की विद्वत्ता तथा अलौकिक चमत्कार शक्ति लोकप्रसिद्ध है । श्री गिरिधर जी महाराज इन पर बहुत ही स्नेह रखते थे, यहाँ तक कि इनकी बेटी श्रीश्यामा बेटी जी इन्हें भाई

के तुल्य मानतीँ और भाईदूज को तिलक काढ़ती थीँ। जिस समय श्री गिरिधर जी महाराज श्री जी द्वार से श्री मुकुन्दराय जी को पधराकर काशी लाए, सब प्रबन्ध इन्हीँ को सौंपा गया था। बड़ी धूम धाम से बारात सजा कर श्री मुकुन्दराय जी को नगर के बाहर से पधरा लाए थे। इसका सविस्तर वर्णन उक्त महाराज की लिखाई "श्री मुकुन्दराय जी की वार्ता" में है। जब कभी महाराज बाहर पधारते, मन्दिर इन्हीँ के सपुर्द कर जाते। उक्त महाराज तथा श्रीश्यामा बेटी जी के लिखे मुख्तारनामा आम इनके तथा बाबू गोपालचन्द्र जी के नाम के अब तक रक्षित हैं।

इन्होँ ने उक्त महाराज की आज्ञा से अपने घर में श्री वल्लभकुल के प्रथानुसार ठाकुर जी की सेवा पधराई और उनके भोग राग का प्रबन्ध राजसी ठाठ से किया। ठाकुर जी की परम मनोहर मूर्ति, युगल जोड़ी, धातु विग्रह है, तथा नाम "श्री मदन मोहन जी" है। वर्तमान शैली से सेवा होते हुए ८५ वर्ष से अधिक हुआ; परन्तु सुनते हैं कि ठाकुर जी और भी प्राचीन हैं। पहिले इनकी सेवा गोकुलचन्द्र साहो के यहाँ होती थी। बाबू हरिश्चन्द्र और बाबू गोकुलचन्द्र में जिस समय हिस्सा हुआ, उस समय एक बाग़, बड़ा मकान, एक बड़ा ग्राम माफ़ी और पचास हज़ार रुपया ठाकुर जी के हिस्से में अलग कर दिया गया और ठाकुर जी का महा प्रसाद नित्य ब्राह्मण वैष्णव तथा सद्गृहस्थ लेते हैं।

इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम चम्पतराय अमीन की बेटी से। इन चम्पतराय का उस समय बड़ा ज़माना था। सुनते हैं कि वह इतने बड़े आदमी थे कि सोने की थाल में भोजन करते थे। जिस समय चम्पतराय की बेटी ब्याह कर आईं तो यहाँ उन्हें मामूली बर्तन बर्तने पड़े। इस पर उन्होँ ने कहा "हाय, अब हमको इन बर्तनों में खाना पड़ेगा"। अब एक चम्पतराय अमीन के बाग़ के अतिरिक्त और कोई चिन्ह इनका नहीँ है। इनसे बाबू हर्षचन्द्र को कोई सन्तान नहीँ हुई। दूसरा विवाह इनका बाबू वृन्दावनदास की कन्या श्यामा बीबी से हुआ। इन्हीँ से इनको पाँच सन्तान हुईं, जिन में से दो कन्या तो बचपन ही में मर गईं, शेष तीन का वंश चला। यह बाबूवृन्दावन दास भी उस समय के बड़े धनिकों में थे, परन्तु

पीछे इन का भी वह समय न रहा । इन के दो बाग़ थे, एक मौज़ा कोल्हुआ पर और दूसरा महल्ला नाटीइमली पर । ये दोनों बाग़ बाबू हर्षचन्द्र को मिले । बाबू वृन्दावनदास को हनुमान जी का बड़ा इष्ट था । इन के स्थापित हनुमान जी अब तक नाटीइमली के बाग़ में हैं ।

एक समय श्री गिरिधर जी महाराज को चालिस सहस्र रुपए की आवश्यकता हुई । उन्हों ने बाबू हर्षचन्द्र से कहा कि इस का प्रबन्ध कर दो । इन्हों ने कहा महाराज इस समय इतना रुपया तो प्रस्तुत नहीं है । कोल्हुआ और नाटीइमली का बाग़ मैं भेंट कर देता हूँ, इसे बेच कर काम चला लीजिए । श्री महाराज का ऐसा प्रताप था कि एक कोल्हुआ का बाग़ चालीसहज़ार में बिक गया और नाटीइमली का बाग़ बच गया । इस बाग़ का नाम महाराज ने मुकुन्दविलास रक्खा । यह अद्यावधि मन्दिर के अधिकार में है और काशी के प्रसिद्ध बाग़ों में एक है । इस वंश से इस बाग़ से अब तक इतना सम्बन्ध शेष है कि काशी के प्रसिद्ध भरतमिलाप के मेले में इसी बाग़ के एक कमरे में बैठ कर इस वंश के लोग भगवान का दर्शन करते हैं और इस में भगवान का विमान ठहरता है, तथा इस वंश वाले जाकर पूजा आरती करते, भोग लगाते और १) भेंट करते हैं । दो दिन और भी श्रीरामचन्द्र जी की पहुनई होती है, एक दिन बाग़ रामकटोरा में और एक दिन चौकाघाट पर जिस दिन हनुमान जी से भेंट होती है ।

यहाँ पर इस रामलीला का संक्षिप्त इतिहास लिख देना भी हम उचित समझते हैं । जब काशी में जंगल बहुत था (बनकटी के समय), उस समय यहां एक मेघा भगत रहते थे। उन्हें श्री भगवान के दर्शन की बड़ी लालसा हुई । उन्हों ने अनशन व्रत लिया । एक दिन रामचन्द्र जी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि इस कलियुग में इस चाक्षुष जगत में हमारा प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता । तुम हमारी लीला का अनुकरण करो । उस मे दर्शन होगा; तथा धनुष बाण वहां प्रत्यक्ष छोड़ गए, जिस की पूजा अब तक होती है । मेघा भगत ने लीला आरम्भ की और उनकी मनोकामना पूरी हुई । यह लीला चित्रकोट की लीला के नाम से प्रसिद्ध हुई । जिस दिन श्री रामचन्द्र

की झलक मेघा भगत को झलकी थी, वह भरतमिलाप का दिन था और तभी से यह दिन परम पुनीत समझा गया, तथा अब तक लोगों का विश्वास है कि उस दिन रामचन्द्र जी की झलक आ-जाती है। इस लीला के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी ने लीला आरम्भ की, जो अब अस्सी पर तुलसीदासजी के घाट पर होती है, और उसके पीछे लाट भैरो की लीला आरम्भ हुई। इस लाट-भैरोकी लीला में 'नककटैया' (शूर्पनखा की नाक काटने की लीला) मसजिद के भीतर होती हैं, जो मुसलमानों की अमलदारी से चली आती है, और प्रायः इस के लिये काशी में हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा हुआ किया है। निदान मेरी समझ में रामलीला की प्रथा सर्व प्रथम संसार में मेघा भगत ने आरम्भ की। इस लीला की यहाँ प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक है। सब महाजन लोग इसमें चिट्ठा भरते हैं और प्रतिष्ठित लोग बिना कुछ लिए सब सेवा करते हैं। इस चिट्ठे का आरंभ पहिले बाबू जानकीदास और उक्त बाबू हर्षचन्द्र के वंशवाले करते हैं और फिर नगर के सब महाजन यथाशक्ति लिखते हैं। पहिले तो विजया दशमी के दिन यहां के बड़े बड़े महाजन, रात्रि को जब विमान उठता था, जामा पगड़ी पहिर कर कन्धा लगाते थे। अब तक भी बहुत लोग कन्धा देते हैं। विजया दशमी और भरत मिलाप में अब तक प्राचीन मर्यादावाले लोग पगड़ी पहिर कर दर्शन को जाते हैं। भरत मिलाप यहां के प्रसिद्ध मेलों में है। सारा शहर सूना हो जाता है और भरत मिलाप के स्थान से लेकर 'अयोध्या' तक, जिसमें लगभग आधी मील का अन्तर होगा, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं। भरतमिलाप ठीक गोधूली के समय होता है। इस दिन दर्शनों के लिये काशिराज भी आया करते हैं।

सुनते हैं एक समय किसी अँगरेज़ हाकिम ने कहा कि हनुमान जी तो समुद्र पार कूद गए थे; तब हम जानें जब तुम्हारे हनुमान जी वरुणा नदी पार कूद जायँ। हनुमान जी चट कूद गए, परन्तु उस पार जातेही उनका प्राणान्त होगया। उस अँगरेज़ की सार्टिफ़िकेट अब तक महन्त के पास है।

बाबू हरिकृष्णदास टेकमाली ने अपने ग्रन्थ "गिरिधरचरितामृत"

में उनका चरित्र वर्णन करते समय लिखा है कि ये कविता भी करते थे, परन्तु अब तक इनकी कविता हम लोगों के देखने में नहीं आई।

इनका स्वभाव बड़ा ही अमीरी और नाज़ुक था, ज़नाने मर्दाने सब घरों में फ़ौवारे बने थे गर्मियों में जहाँ वह बैठते फ़ौवारा छूटा करते, एक दिन बाबू जानकीदास ने कहा कि आप बीमा का रोज़गार क्यों नहीं करते यह बिना गुठली का मेवा है" इन्होंने उत्तर दिया "सुनिए बाबूसाहब हम ठहरे आनन्दी जीव, अपनी जान को बखेड़े में कौन फँसावे, सावन भादों की अँधेरी रात में आनन्द से सोए हैं, पानी बरस रहा है, हवा के झोंके आ रहे हैं, उस समय ध्यान आया नावों का, प्राण सूख गया, बिचारा इस समय हमारी दस नाव गंगाजी में हैं कहीं एक भी डूबी तो दस-हज़ार की ठुकी, चलो सब आनन्द मिट्टी हुआ"।

जौनपुर के राजा शिवलाल दूबे से इनसे बहुत ही स्नेह था, नित्य मिलना और हवा खाने जाने का नियम था।

सन् १८६० ई० में गवर्नमेन्ट ने इनकम टैक्स लगाया था और काशी से सवालाख रुपया वसूल करने की आज्ञा दी थी इसके प्रबन्ध के लिये एक कमिटी बनाई गई थी जिसका प्रबन्ध इनके हाथ में था।

गोपालमन्दिर के दोनो नक्कारख़ाने इन्हीं के यहाँ से बने हैं। एक तो बाबू गोपालचन्द्र के जन्म पर बना था और दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म पर।

हम श्री मुकुन्दरायजी के मन्दिर तथा श्री गिरिधरजी महाराज के विषय में ऊपर लिख चुके हैं परन्तु कुछ बातें और भी लिखनी आवश्यक रह गई हैं।

जिस समय मन्दिर बनकर तयार हुआ और श्री मुकुन्दरायजी यहाँ पधारे यहाँ के महाजनों ने, जिनमें ये प्रधान थे, बिचार किया कि इस मन्दिर के व्यय निर्वाहार्थ कुछ प्रबन्ध होना चाहिए, सभों ने सम्मति कर के एक चिट्ठा खड़ा किया और सवापाँच आना सैकड़ा मन्दिर सब व्यापारी काटने लगे, यह कमख़ाब वाफ़ता आदि यावत् बनारसी कपड़े, गोटे पट्ठे और जवाहिरात, इत्यादि पर

कटना था। यह चिट्ठा बहुत दिनों तक चलता रहा, और हिन्दू मुसल्मान सभी व्यापारी इसे देते रहे परन्तु श्रीगिरिधर जी महाराज के पीछे यह शिथिल हो चला है अब तक सवापाँचआने सैकड़े सब व्यापारी काट तो लेते हैं परन्तु कोई मन्दिर में देता है, कोई नहीं और कोई उसे दूसरेही धर्मार्थ कार्य में लगा देता है।

श्री गिरिधर जी महाराज का ऐसा शुद्ध चरित्र और चमत्कार प्रकाश था, कि काशी ऐसी शैव नगरी में उन्हीं का प्रताप था जो वैष्णवता की जड़ जमाई और इस मन्दिर को इतनी उन्नति बिना किसी राज्याश्रय के दी, परन्तु इनका स्वभाव इतना सादा था कि, आत्मोत्कर्ष और आत्मसुख की ओर इनका तनिक भी ध्यान न था। बाबू हर्षचन्द्र ने बहुत तरह से निवेदन किया कि जैसे श्री वल्लभकुल के अन्यान्य प्रतापी गोस्वामि बालकों का जन्मदिनोत्सव होता है वैसे ही आपका भी हो, परन्तु महाराज इसे स्वीकार नहीं करते थे, जब बहुत दिनों तक यह आग्रह करते रहे तब महाराज ने स्वीकार किया परन्तु इस प्रतिबन्ध के साथ कि इस उत्सव पर हम मन्दिर से कुछ व्यय न करेंगे निदान पौषकृष्ण तृतीया को महाराज के जन्म दिन का उत्सव होने लगा, श्री गोपाल लाल जी, श्री मुकुन्दराय जी तथा श्री गोपीनाथ जी का साठन का बागा (वस्त्र) श्री गिरिधर जी महाराज का बागा सब यहीं से जाता और वहाँ धराया जाता, तथा महाराज के केसर स्नान में भोग, निछावर, आरता तथा भेट आदि इन्हीं की ओर से होता है; अब यह उत्सव श्रीमुकुन्दराय जी के घर के सब सेवक मानते हैं।

सन् १८३४ ई० में गवर्न्मेन्ट की ओर से महाजनों से व्यापार की अवस्था और सोना चाँदी की बिक्री के कमी का कारण पूछा गया था। उन प्रश्नों का जो उत्तर बाबू हर्षचन्द्र ने दिया था, वह पुराने कागज़ों में मुझे मिला। उस से देश दशा का ज्ञान होता है इसलिये उस का अनुवाद यहाँ प्रकाशित करता हूँ।

१ प्रश्न—सन् १८१९ से चाँदी और सोना की खरीद कम हुई है या अधिक और उसका कारण क्या है?

उत्तर—सन् १८१६ से चाँदी और सोने की खरीद बहुत कम हो गई है। चाँदी की खरीद में कमी का कारण यह है कि जब बना-

रस में टकसाल जारी थी, चाँदी का लेन देन जारी था, इससे भाव भी उसका महँगा था और जब से टकसाल बन्द हुआ तब से इसकी बिक्री कम हो गई इससे भाव भी गिर गया।

सोने की ख़रीद कम होने का कारण यह है कि उस समय इस प्रांत के लोग सुखी थे और देहाती लोग भी बड़ा लाभ उठाते थे इसलिये सोने की बाहरी ख़रीदारी अधिक होती थी और भाव भी महँगा था। और अब चारों ओर दरिद्रता फैल गई है तो सोना की ख़रीद कहाँ से हो?

२ प्रश्न—क्या कोई ऐसा दस्तूर नियत हुआ है जिससे चाँदी सोना का लेन देन कम होकर हुंडी और किसी दूसरे प्रकार का एवज़ मबावज़ः जारी हुआ है?

उत्तर—सोने चाँदी के बदले में कोई दस्तूर हुण्डी का जारी नहीं हुआ है व्यापार की कमी कि जिसका कारण चौथे प्रश्न के उत्तर में लिखा जायगा और भाव के गिरने से यह कमी हुई है।

३ प्रश्न—टकसाल बन्द होने से बाहरी सोना चाँदी की आमदनी कम हो गई है या नहीं?

उत्तर—टकसाल बन्द हो जाने से एक बारगी बाहरी आमदनी सोना चाँदी की कम हो गई है।

४ प्रश्न—इस बात पर विचार करके लिखिए कि सन् १८१३ व १८१४ से अब तक भाव हुण्डियावन का बड़े बड़े दिसावरों में पर्ता फैलाने से कमी के कारण व्यापार में अन्तर पड़ा है, या सन् १८१८ व १८१९ में सोना चाँदी की आमदनी की कमी से?

उत्तर—सन् १८१३ से १८२० व १८२२ तक इस प्राँत के लोग बड़ा लाभ उठाते थे। और हर तरह का रोज़गार जारी था। और भाव हुण्डियावन उस सन् से अब कम नहीं है। वरन् अधिक है, यद्यपि उन सनों में बनारस के पुराने सिक्के की चलन थी जिसकी चाँदी मे बट्टा नहीं था जब से

फ़र्रुख़ाबादी सिक्का चला उसके बट्टा के कारण हुण्डियाचन का भाव हर देसावर में बढ़ गया। हाँ, इन दिनों अवश्य फ़र्रुख़ाबादी सिक्का जारी रहने पर भी भाव हुण्डियावन गिर गया है। रोज़गार की कमी के कारण नीचे निवेदन करता हूँ।

१—परम उपकारी कम्पनी बहादुर की सरकार से कि जो उपकार का भण्डार और प्रजा पोषण की खानि है सूद की कमी हो गई कि सन् १८१० तक सब लोग सर्कार में रुपया जमा करके छ रुपया सैकड़ा वार्षिक सूद लेते थे अब पाँच रुपया से होते होते चार रुपए तक नौबत पहुँच गई। प्रजा का काम कैसे चले?

२—अँग्रेज़ साहबों के कारबार बिगड़ जाने से, कि जिनकी ओर से हर ज़िलों में नील की बड़ी खेती होती थी और उससे ज़मींदारों को बड़ा लाभ होता था, ज़मींदारों को कष्ट है और खेती पड़ी रह गई।

३—अदालत के अप्रबन्ध और रुपया के वसूल होने में अदालत के डर के कारण कारबार देन लेन महाजनी कि जिससे सूद का अच्छा लाभ था एक दम बन्द हो गया।

४—साहब लोगों के बहुत से हाउस बिगड़ जाने से बहुतेरे हिन्दुस्तानियों के काम, लाखों रुपया मारे जाने के कारण बन्द हो जाने से दूसरा काम भी नहीं कर सकते।

५—विलायत से असबाब आने और सस्ता बिकने के कारण यहाँ के कारीगरों का सब काम बन्द और तबाह हो गया।

६—सर्कार की ओर से इस कारण से कि विलायत में रुई पैदा न हुई यहाँ से रुई की ख़रीद हुई इससे भी कुछ लाभ था पर वह भी बन्द हो गई।

इन्हीं कारणों से रोज़गार में कमी हो गई है।

६ प्रश्न—बलन के रुपया की रोज़गार के काम में आमदनी कलकत्ता से होती है या नहीं यदि होती है तो उसका ख़र्च अनुकूल और प्रतिकूल समय में क्या पड़ता है?

उत्तर—कलकत्ता से बहुत रुपया चलान नहीं आता और यदि कुछ रुपया आता है तो लाभ नहीं होता वरञ्च बट्टी और सूद की हानि के कारण घाटा पड़ता है इसी से रुपया के बदले में हुंडी का आना जाना जारी है।

द: बाबू हर्षचन्द

ता० २९ जुलाई सन् १८३४

एक बेर यह श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को पुरी गए थे। तब तक रेल नहीं चली थी, अतएव खुशकी के रास्ते गए थे। बङ्गाल के प्रसिद्ध लाला बाबू * से इनके वंश से मुर्शिदाबाद ही से बहुत सम्बन्ध था। एक दिन ये उनके यहाँ मेहमान हुए। वहाँ इनके ठाकुर श्री कृष्णचन्द्रमा जी का बहुत भारी मन्दिर और वैभव है। सुना है कि इनके पहुँचते ही उनकी ओर से श्री ठाकुर जी का बालभोग महाप्रसाद आया जो कि सौ चांदी के थालों में था। सब प्रसाद फलाहारी था और एक सौ ब्राह्मण लाए थे, जो सबके सब एक ही रङ्ग का पीताम्बर उपरना पहिरे हुए थे।

---

* इस वंश के अधिष्ठाता दीवान गङ्गागोविन्द सिंह थे जो कि वारेन हेस्टिङ्गस के बनियां थे, और बड़ी सम्पत्ति छोड़ मरे। बङ्गाल में ये पाइकपाड़ा के राजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। परन्तु इनका मुख्य वासस्थान मौजा कांदी जिला मुर्शिदाबाद है। इन्होंने अपनी माता के श्राद्ध में २० लाख रुपया व्यय किया था और उसमें समग्र बङ्गाल के राजा महाराजा आए थे। ऐसा श्राद्ध कभी नहीं हुआ था। इनके वंश में राजा कृष्णचन्द्र सिंह प्रसिद्ध नाम लाला बाबू हुए। इन्होंने अपने राज्यैश्वर्य को छोड़कर श्री वृन्दावनमें वास किया। वहाँ वे मधुकरी माँग कर खाते थे। श्रीठाकुरजी का मन्दिर और वैभव काँदी और श्री वृन्दावन में बहुत बढ़ाया (See Crowses Nathura)। इनके विषय में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी अपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

लाला बाबू बङ्गाल के वृन्दावन निवसत रहे।
छोड़ि सकल धन धाम वास ब्रज को जिन लीनो॥
मांगि मांगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो।
हरि मन्दिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो॥
साधु सन्त के हेत अन्न को सत्र चलायो।
जिनकी मृत देहहु सब लखत ब्रज रज लोटत फल लहे॥

इनका नाम तैलंग देश में बहुत प्रसिद्ध है । जो बड़ा दीवान-खाना इन्होंने बनवाया, उसके ऊपर एक छोटा मन्दिर भी श्री ठाकुर जी का है । उस पर स्वर्ण कलश लगे हुए हैं । उसीसे सारे तैलङ्ग देश में इनका नाम नवकोटि नारायण † नाम से प्रसिद्ध हो गया है और यावत् तैलङ्गी लोग इस कलश के दर्शनार्थ आते और हाथ जोड़ जाते हैं । यह बात काशी के यावत् यात्रावालोंको विदित है; जहाँ उन्होंने नवकोटि नारायण का नाम लिया, वह यहाँ ले आए ।

बाबू हर्षचन्द्र एक वसीयतनामा लिख गए थे जिसके द्वारा कोठीके प्रबन्ध का भार विर्झीलाल को सौंप गए थे । बाबू गोपाल-चन्द्र की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष की थी, विर्झीलाल प्रबन्ध करने लगे परन्तु प्रबन्ध संतोषदायक न हो सका और उस समय जैसी कुछ क्षति इस घर की हुई वह अकथनीय है । उस समय काशी के रईसों में बड़ा मेल था, बाबू वृन्दावनदास (बाबू गोपाल चन्द्र के मातामह) ने राय खिरोधर लाल की सहायता से कोठी में ताला बन्द कर दिया और अदालत में कोठी के प्रबन्ध के लिये दर्खास्त दी परन्तु वसीयतनामा के कारण ये लोग हार गए और प्रबन्ध विर्झीलाल ही के हाथ रहा इस समय बहुत कुछ हानि कोठी की हुई और और भी अधिक होती परन्तु बाबू गोपालचन्द्र की बुद्धि चमत्कारिणी थी उन्होंने १३ ही वर्ष की अवस्था में अपना कार्य आप सँभाल लिया और फिर किसी की कुछ न गलने पाई ।

——:o:——

बाबू गोपालचन्द्र ।

बाबू हर्षचन्द्र की बड़ी अवस्था हो गई और कोई पुत्र सन्तान न हुई । एक दिन यह श्री गिरिधर जी महाराज के पास बैठे हुए थे । महाराज ने पूछा बाबू , आज तुम उदास क्यों हो ? लोगों ने कहा

† तैलङ्ग देश में कोई नवकोटि नारायण बड़े धनिक हो गए हैं । इन्हें वहाँ के लोग एक अवतार मानते हैं और इनके विषय में नाना किम्वदन्ती उस देश में प्रसिद्ध हैं । इनका पूरा इतिहास Indian Antipuary में छपा है ।

कि इनकी इतनी अवस्था हुई, परन्तु कोई सन्तान न हुई, वंश कैसे चलैगा; इसी की चिन्ता इन्हें हैं । महाराज ने आज्ञा की कि तुम जी छोटा न करो । इसी वर्ष तुम्हें पुत्र होगा । और ऐसा ही हुआ । मिती पौष कृष्ण १५, संवत् १८६० को कविकुलचूड़ामणि बाबू गोपालचन्द्र का जन्म हुआ । केवल श्री गिरिधर जी महाराज की कृपा से जन्म पाने और उनके चरणारविन्दों में अटल भक्ति होने के कारण ही इन्होंने कविता में अपना नाम गिरिधरदास रक्खा था ।

——:o:——

विवाह ।

बाबू हर्षचन्द्र को एक पुत्र के अतिरिक्त दो कन्या भी हुई बड़ी का नाम यमुना बीबी (जन्म भादों व० ८, सं० १८६२) और छोटी गङ्गा बीबी (जन्म भादों व० ४ सं० १८६४)

बाबू हर्षचन्द्र ने अपनी तीन सन्तानों में से दो का विवाह अपने हाथों किया । पहिले यमुना बीबी का पीछे बाबू गोपालचन्द्र का । गङ्गा बीबी का विवाह बाबू गोपालचन्द्र के समय में हुआ ।

यमुना बीबी का विवाह काशी के प्रसिद्ध रईस, राजा पट्टनीमल बहादुर के पौत्र राय नृसिंहदास से हुआ । राजा पट्टनीमल, पटने के महाराज ख्यालीराम बहादुर के पौत्र थे । यह महाराज ख्यालीराम बिहार के नायब सूबेदार थे । इनका सविस्तर वृत्तान्त बङ्गाल और बिहार के इतिहासों में मिलता है । राजा पट्टनीमल ऐसे प्रतापी हुए कि ये छोटी ही अवस्था में पिता से कुछ अप्रसन्न होकर चले आए और फिर लखनऊ गए । वहाँ उस समय अँगरेज़ गवर्न्मेंट से और नवाब लखनऊ से सुलह की शर्तें तै हो रही थीं । परन्तु नवाब के चालाक अनुचरवर्ग कभी कुछ कह देते, कभी कुछ; किसी तरह बात तै न होने पाती । निदान उन शर्तों को तै करने के लिये राजा पट्टनीमल नियत किए गए । इन्होंने पहिले ही यह नियम किया कि हम ज़ुबानी कोई बात न करेंगे, जो कुछ हो लिख कर तै हो । अब तो कोई कला उन लोगों की न चलने लगी । नवाब की ओर से

राजा साहब के उस्ताद मौलवी साहब भेजे गए। राजा साहब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा क्या आज्ञा है। मौलवी साहब ने एक लाख रुपए की अशर्फियें राजा साहब के आगे रख दीं और कहा कि आप नवाब पर रहम करें। हिन्दू मुसलमान तो एक ही हैं, ये फ़िरङ्गी परदेसी हमारे कौन होते हैं। सुलहनामे में नवाब के लाभ की ओर विशेष ध्यान रक्खें, अथवा आप इस काम से अलग ही होजांय। राजा साहब ने बहुत ही अदब के साथ निवेदन किया कि आप उस्ताद हैं, आपको उचित है कि यदि मैं कोई अनुचित कार्य करूं तो मुझे ताड़ना दें, न कि आप स्वयं ऐसा उपदेश मुझे दें। यह सेवकधर्मविरुद्ध काम मुझसे कभी न होगा और देशी तथा विदेशी क्या, हमारे लिये तो जब विदेशी की सेवा स्वीकार कर ली, तो फिर वह लाख देशियों से बढ़ कर हैं। निदान मौलवी साहब मुंह ऐसा मुंह लेकर चले आए। कहते हैं कि राजा साहब को आगरे के क़िले से बहुत धन मिला, जिसका ठीका उन्हों ने राय ज्योतिप्रसाद ठीकेदार के साझे में लिया था। उन्होंने मथुरा वृन्दावन में दीर्घविष्णु का मन्दिर, शिव तालाब कुञ्ज आदि (See Growse's Mathura), आगरे में शीशमहल, पीली कोठी आदि, दिल्ली में आलीशान मकानात, काशी में कीर्त्तिवासेश्वर का मन्दिर, हरतीर्थ, कर्मनाशा का पुल आदि सैकड़ों ही कीर्ति के अतिरिक्त एक करोड़ की सम्पत्ति छोड़ी; और इनका पुस्तकालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था (भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित "पुरावृत्तसंग्रह" देखो)। हम राजा साहब के उदार हृदय का उदाहरण दिखाने के लिये केवल एक घटना का उल्लेख करके प्रकृत विषय का वर्णन करेंगे। राजा साहब के मुख्तार बाबू बेनीप्रसाद राजा साहब के किसी कार्यवश कलकत्ते गए थे। वहाँ लाख रुपए पर दस २ रुपए की चिट्ठी पड़ती थी। एक चिट्ठी इन्होंने भी राजा साहब के नाम से डलवाई और राजा साहब को लिख दिया राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि मैं जूआ नहीं खेलता, यह तुम ने ठीक नहीं किया; खैर अब तुम इस रुपए को खर्च में लिख दो। संयोगवश वह चिट्ठी राजा साहब के नामही निकल आई और लाख रुपया मिला। बाबू बेनीप्रसाद ने फिर राजा साहब को लिखा।

राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि हम पहिले ही लिख चुके हैं कि हम जूआ नहीं खेलते, अतएव हम जूए का रुपया न लेंगे, तुम्हारा जो जी चाहे करो। उसी रुपए के कारण उक्त बाबू बेनीप्रसाद के वंशधर काशी में बड़े गृह और ज़िमीदारी के स्वामी हैं। इस विवाह में राजा साहब जीवित थे। सुना है कि बड़ी धूम का विवाह हुआ था और बड़ी ही शोभा हुई थी।

यमुना बीबी को कई सन्तति हुईं, परन्तु कोई भी न जीई। इससे अन्त में राय प्रह्लाददास और उनकी कनिष्ठा भगिनी सुभद्रा बीबी अपने ननिहाल में पले। राय प्रह्लाददास इस समय काशी में आनरेरी मेजिस्ट्रेट हैं। ननिहाल के संसर्ग से इनकी रुचि संस्कृत की ओर अधिक हुई और ये अच्छी संस्कृत जानते हैं। सुभद्रा बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध धनिक साहो गोपालदास के वंशज बाबू बैद्यनाथ प्रसाद के साथ हुआ था। परन्तु अब वे दोनों ही पति पत्नी जीवित नहीं है। केवल उनके पुत्र बाबू यदुनाथ प्रसाद उनके उत्तराधिकारी हैं।

गङ्गा बीबी का विवाह प्रबन्धलेखक के पिता बाबू कल्यानदास के साथ हुआ। यह विवाह बाबू गोपालचन्द्र जी ने किया था। इन्हें दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास का बचपन ही में परलोकवास हुआ। कन्या लक्ष्मीदेवी का विवाह बाबू दामोदर दास बी० ए० के साथ हुआ था जो कि निःसन्तान ही मर गईं। तीसरा पुत्र इस प्रबन्ध का लेखक है।

बाबू गोपालचन्द्र का विवाह दिल्ली के शाहज़ादों के दीवान राय खिरोधर लाल की कन्या पार्वती देवी से संवत १९०० में हुआ। राय खिरोधर लाल का वंश फ़ारसी में विशेष विद्वान था और इन्हें वंश परम्परागत राय की पदवी दिल्ली दर्बार से प्राप्त थी। राय साहब को एक ही कन्या थी। इधर बाबू हर्षचन्द को एक ही पुत्र। विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बाबू हर्षचन्द के चौखम्भास्थित घर से राय खिरोधर लाल का शिवालास्थित भवन तीन मील से कम नहीं है, परन्तु बारात इतनी भारी निकली थी कि वर अपने घर ही था कि बारात का निशान समधी के घर पहुँचा, अर्थात् तीन मील

लम्बी बारात थी। राय साहब ने भी ऐसी खातिर की थी कि कुओं में चीनी के बोरे छुड़वा दिए थे। यह विवाह काशी में अब तक प्रसिद्ध है।

यह पार्वती देवी अत्यन्त ही सुशीला थीं। प्राचीन स्त्रिएँ इनके रूप और गुण की प्रशंसा करते नहीं अघातीं। इन्हें चार सन्तति हुईं। मुकुन्दी बीबी, बाबू हरिश्चन्द्र; बाबू गोकुल चन्द्र और गोविन्दी बीबी।

अपनी सन्तानों में केवल बड़ी कन्या मुकुन्दी बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध रईस बाबू जानकीदास साहो के पुत्र बाबू महावीरप्रसाद् के साथ, अपने सामने किया था।

बाबू हरिश्चन्द्र का विवाह शिवाले के रईस लाला गुलाब राय की कन्या श्री मती मन्नो देवी से, बाबू गोकुलचन्द्र का विवाह बाबू हनुमानदास की कन्या श्री मती मुकुन्दी देवी से और श्री मती गोविन्दी देवी का विवाह पटना के सुप्रसिद्ध नायब सूबा महाराज ख्यालीराम के वंशधर राय राधाकृष्ण राय बहादुर के साथ हुआ इनके पुत्र राय गोपीकृष्ण बहुतेही योग्य और होनहार थे। बी. ए. पास किया था। २५ ही वर्ष की छोटी अवस्था में गवर्मेन्ट और प्रजा के परम प्रीति पात्र हो गए थे, परन्तु हाय! निर्दय काल ने इस खिलते हुए कमल को उखाड़ फेंका! इनकी असमय मृत्यु पर सारे पटने में हाहाकार मच गया। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बङ्गाल ने शोक प्रकाश किया और वृद्ध पिता राय राधाकृष्ण को आश्वासन देने के लिये स्वयं आए थे।

राय खिरोधर लाल की श्री मती पार्वती देवी के अतिरिक्त और कोई सन्तति न थी इस लिये उनकी स्त्री श्री मती नन्ही देवी ने दौहित्र बाबू गोकुलचन्द्र को अपने पास रक्खा था और उन्हीं को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी किया।

श्रीमती पार्वती देवी के मरने पर इनका दूसरा विवाह उसी वर्ष फाल्गुण सम्वत १९१४ में बाबू रामनारायण की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से इन्हे दो सन्तान हुए। प्रथम पुत्र हुआ। नाम उसका श्याम चन्द्र रक्खा गया था. परन्तु तीन ही

महीने का होकर मर गया। द्वितीय कन्या हुई जो कि प्रसूतिगृह में ही मर गई। मोहन बीबी की मृत्यु सम्वत १९३८ के माघ कृष्ण १० को हुई।

बाबू हर्षचन्द्र का परलोकवास ४२ वर्ष की अवस्था में सम्वत १९०१, मिती वैसाख वदी १३, को हुआ। बाबू गोपालचन्द्र की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष ही की थी। कविता की कमनीय कान्ति का अनुराग बाबू गोपालचन्द्र को बाल्यावस्था ही से था। इसी से आप लोग समझ लीजिए कि १३ ही वर्ष की अवस्था में सम्वत १९०३ में वृहत् वाल्मीकीय रामायण का भाषा छन्दोबद्ध अनुवाद इन्हों ने किया, परन्तु दुर्भाग्यवश अब इस अनुवाद का पता कहीं नहीं लगता है। केवल अस्तित्व के प्रमाण के लिये ही मानो "बाला बोधिनी" में इसका एक अंश छपा है। हिन्दी और सँस्कृत की कविता इनकी प्रसिद्ध है। परन्तु कभी कभी उर्दू की भी कविता करते थे। उन्हों ने एक "ग़ज़ल" में लिखा है।

" दास गिरिधर तुम फ़क़त हिन्दी पढ़े थे खूबसी,
किस लिये उर्दू के शायर में गिने जाने लगे। "

——:o:——

शिक्षा और चरित्र।

पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इतने बड़े धनिक के एक मात्र पुत्र सन्तान का लालन पालन कितने लाड़ चाव से हुआ होगा, और हमारे देश की स्थिति के अनुसार इनकी सी अवस्था के बालक, जिनके पिता भी बचपन ही में परलोकगामी हुए हों, कैसे सुशिक्षित और सच्चरित्र हो सकते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि इनके विषय में सब विपरीत ही हुआ। इनका सा विद्वान और सच्चरित्र ढूँढने से कम मिलेगा। इनका कारण चाहे भगवत कृपा समझिए, या ऋषि तुल्य गुरु श्री गोस्वामी गिरधर जी महाराज का आशीर्वाद, सहवास और शिक्षा। जो कुछ हो, इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। नियम पूर्वक शिक्षा न होने पर भी सँस्कृत और भाषा

के ये ऐसे विद्वान थे कि पण्डित लोग इनका आदर करते थे। चरित्र इनका ऐसा निर्मल था कि काशी के लोग इन्हें बहुत ही भक्तिभाव से देखते थे, यहाँ तक कि प्रसिद्ध कमिश्नर मिस्टर गबिन्स ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "बाबू गोपालचन्द्र परकटा फरिश्ता हैं"। सन् ५७ के बलवे में रेज़िडेन्सी के चाँदी सोने के असबाब आसा बल्लभ आदि इन्हीं की कोठी में रक्खे गए थे। क्रोध तो इन्हें कभी आता ही न था, पर जब कोई गोपालमन्दिर आदि धर्म सम्बन्धी निन्दा करता तो बिगड़ जाते। रायनृसिंहदास प्रायः चिढ़ाया करते थे। इनके विचार कैसे थे, यह पाठक पूज्य भारतेन्दुजी के निम्न लिखित वाक्यों से, जो उन्होंने 'नाटक' नामक ग्रन्थ में लिखे हैं जान सकते हैं। "विशुद्ध नाटक रीति से पात्रप्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द्र जी) का है। मेरे पिता ने बिना अँगरेज़ी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नहीं है। उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अँगरेज़ी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित था। पहिले तो धर्म ही के विषय में वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उन्होंने उठा दिया था। टामसन साहब लेफ़्टिनेंट गवर्नर के समय काशी में पहिला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को इन्होंने उस स्कूल में प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत कठिन था, क्योंकि इस में बड़ी ही लोकानिन्दा थी। हम लोगों को अँगरेज़ी शिक्षा दी। सिद्धान्त यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है।......केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया, किन्तु इसी अवस्था में ४० ग्रन्थ बनाए।" विद्या की इन्हें ऐसी रुचि थी कि बहुत धन व्यय करके बृहत सरस्वती भवन का सङ्ग्रह किया था जिस में बड़ी अलभ्य और अमूल्य ग्रन्थों का संग्रह है। डाक्टर राजेन्द्र लालमित्र इस पुस्तकालय का मूल्य एक लाख रुपया दिलवाते थे। इन ग्रन्थों का पहाड़ बनाकर उस पर

सरस्वती देवी की मूर्ति स्थापन करके आश्विन शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक उत्सव करते थे जो अब तक होता है।

अपने चौखम्भास्थित भवन में इन्हों ने एक पाईं बाग़ श्री ठाकुर जी के निमित्त बहुत सुन्दर बनवाया ।

बाग़ रामकटोरा के सामने सड़क पर रामकटोरा तालाब का जीर्णोद्धार बहुत रुपया लगाकर किया था। यह तालाब चारो ओर से पक्का बँधा है। पहिले इसमें कटोरे की तरह पानी भरा रहता था पर अब म्यूनिसिपैलिटी की कृपा से नल ऊँची हो जाने से पानी कम आता है। इस तालाब पर एक मन्दिर बनवाकर सब देवताओं की मूर्ति स्थापन करने की इच्छा थी पर पूरी न हो सकी। मूर्तियें अत्यंतही सुन्दर बनवाया था जो अब तक रक्खी हैं।

बाग़ का भी इन्हें शौक़ था। सन् १८६४ में यहाँ एक ऐग्रीकल्चरल शो (कृषि प्रदर्शिनी) हुई थी उसमें इन्हें इनाम और उत्तम सर्टिफ़िकेट मिली थी।

दिनचर्या ।

व्यसन इन्हें भगवत्सेवा या कविता के अतिरिक्त कोई भी न था! जाड़े के दिनों में सवेरे तीन बजे से उठते और मन्दिर के भृत्यों को बुलवाते; और गर्मी के दिनों में पाँच बजे शौचादि से निवृत्त होकर कुछ कविता लिखते। शौच जाते तब क़लम दावात काग़ज़ बाहर रक्खा रहता। यदि कुछ ध्यान आजाता तो शौच से निकलते ही हाथ धोकर लिख लेते, तब दतुयन करते। कभी घर में श्री ठाकुर जी की सेवा में स्नान करने के पहिले श्री मुकुन्दराय जी के दर्शन को तामजाम पर बैठ कर जाते और कभी अपने यहां शृङ्गार की सेवा में पहुँच कर तब जाते। घर में भी ठाकुर जी की शृङ्गार की सेवा से निकल कर कविता लिखते, लेखक चार पांच बैठे रहते और उनको लिखवाते, राजभोग आरती करके दस ग्यारह बजे श्री ठाकुर जी की महाप्रसादी रसोई खाते। भोजनो-

परान्त कुछ देर दर्बार करते थे । और घरके काम काज देखते । फिर दो पहर को कुछ देर सोते । तीसरे पहर को फिर दर्बार लगता । कविकोविदों का सत्कार करते, कविता की चर्चा रहती. संध्या को हवा खाने जाते, गाड़ी तक तामजाम पर जाते । रामकटोरा वाले बाग़ में भाँग पीते । शौच होकर घर आते । हवा खाकर आने पर फिर दर्बार लगता । रात्रि को दस बजे तक भोजन करके सोते । सबेरे बिना कम से कम पांच पद बनाए भोजन न करते । संध्या को सुगन्धित पुष्प का गजरा या गुच्छा पास में अवश्य रहता । रात्रिको पलंग के पास एक चौंकी पर काग़ज़, क़लम, दावात, रहती शमेदान रहता, एक चौंकी पर पानदान और इत्रदान रहता । रात्रि को कविता कुछ अवश्य लिखते । स्वभाव हंसोड़ बहुत था, इसलिये जब बैठते, हंसी दिल्लगी होती, परन्तु दर्बार के समय नहीं । प्रति एकादशी को जागरण करते । बड़ा उत्सव करते थे ।

इनकी एक मौसी थीं, यह स्वभाव की चिड़चिड़ही अधिक थीं और इन्हीं के यहाँ रहती थीं । इन्हें ये प्रायः चिढ़ाया करते थे इन्हें चिढाने के लिये यह कविता बनाया थाः—

घड़ी चार एक रात रहे से उठी घड़ी चार एक गङ्ग नहाइत है ।
घड़ी चार एक पूजा पाठ करी घड़ी चार एक मन्दिर जाइत है ।
घड़ी चार एक बैठ घिताइत है घड़ी चार एक कलह मचाइत है ।
दालि जाइत हैं ओहि साइत की फिर जाइत हैं फिर आइत है ।

कवियों का आदर ।

इनके दर्बार में कवियों का बड़ा आदर होता था । इनके यहाँ से कोई कवि विमुख न फिरता । यद्यपि इनके दर्बारी कवियों का पूरा वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है, तथापि दो तीन कवियों का जो पता लगा है, वह प्रकाशित किया जाता है ।

एक कवि जी को (इनका नाम कदाचित ईश्वर कवि था) एक चश्मे की आवश्यकता थी । उन्होंने एक कविता बना कर दिया ।

उन्हें तुरन्त चश्मा मिला । उस कवित्त का अन्तिम चरण यह है—

"खसमामुखी के मुख भसमा * लगाइबे को यहीं धनाधीश हमें चाहत एक चसमा" ।

एक कवि जी की यह कविता उपलब्ध हुई है—

परझूलिया छन्द—"बैठे हैं विराजो राज मन्दिर मो कियो साज सर्म को साज आसय आजिम अचल हैं । दविता को रहे अरि सविता को सागर मों कविता कमलता के सचिता सबल हैं । कहै कविराज कर जोरे प्रभू गोपालचन्द ए वचन विचारो मेरो विद्या की विमल है । बगर बड़ाई कोऊ सर सोलताई को सुभाजन भलाई को सभाजन सकल है ॥ १ ॥ दोहा ॥ जहाँ अधिक उपमेव है छीन होत उपमान । अलंकार वितरेक को किजत तहाँ बिनान ॥ जथा । बुध सो विरोधे सकल कलानिधि देखो दुःपक्ष्य निर्मल सो न आदर सहे । गुरु से ईस मैं गुरुज्ञान में विलोकियतु कविता अनेक कविताई को सरस है ॥ द्वार आगे हैं राजत गजराज फेरि-यत रीझिं रीझि दीजियत पायन परसतु (स ?) है । कहैं सँभू महाराज गोपालचन्द्र जू धरमराज की सभा ते सभा रावरी सरस हैं ।"

पँडित हरिचरण जी अपने सँस्कृत पत्र मे लिखते हैं:—

"यशोदा गर्भजे देवि चतुर्वर्ग्ज फल प्रदे । श्री मद्गोपालचन्द्राख्य श्चिरायुष्क्रिय तान्त्वया' ॥ सावर्णिरि त्याद्यारभ्य सावर्णिर्भिर्भ विता मनुः । इत्यन्त शत संख्यातं पाठं संकल्प्य दीयताम्" ॥

सुप्रसिद्ध कवि सरदार ने इनके बलिराम कथामृत के आदि से "स्तुति प्रकाश" को लेकर उस पर टीका लिखी है । उसमें उक्त कवि ने इनके विषय में जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं।

छप्पै ।

"विमल बुद्धि कुल बैस बनारस बास सुहावन ।
फतेचन्द आनन्दकन्द जस चन्द बढ़ावन ॥

* मुखरा सरस्वती के मुख में भस्म लगाने के लिये अर्थात् कविता लिखने के लिये ।

हरषचन्द ता नन्द मन्द वैरी मुख कीने।
तासुत श्री गोपालचन्द कविता रस भीने॥
दश कथा अमृत बलराम मैं अस्तुति उह भूषन दियो।
तेहि देखि सुबुध सरदार कवि बुधि समान टीका कियो॥

दोहा।

लोक विभू ग्रह संभु सुत रद सुचि भादव मास।
कृष्णजन्म तिथि दिन कियो पूरन तिलक विलास।"

इस ग्रंथ का कुछ अंश भी हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं

"स्तुति प्रकाशिका" कवि सरदार कृत टीका आदि टीका का।

श्री गोपीजन वल्लभायनम.। दोहा। सुमन हरष धारे सुमन वरषत सुमन अपार। नन्द नन्दन आनन्द भर वन्दत कवि सरदार॥१॥ गिरिधर गिरिधरदास को कियो सुजस ससि रूप। तिहि तकि कवि सरदार मन बाढ़ो सिन्धु अनूप॥ २॥ कुबुधि भूमि लोपित ललित उमग्यो वारि विचार॥ करन लग्यो रचना तिलक उर धरि पवन कुमार॥३॥ पवन पुत्र पावन परम पालक जन पन पूर। अरि घालन सालन सदा दस सिर उर सस सूर॥ ४॥

मूल। प्रभु तव वदन चन्द सम अमल अमन्द।
तमहारी रतिकारी करत अनन्द॥

टीका प्रभु इति। उक्ति ब्रह्मा की है। प्रभु तुमारो वदन चन्द सम अमल अमंद तम हरन रति करन प्रीति करन आनन्द करन है। वदन उपमेय चन्द उपमान। सम वाचक। अमल। आदिक साधारन धर्म। तातें पूर्णोपमालङ्कार। प्रश्न। साधारन धर्म का कहावै। जो उपमान उपमेय दोउन में होय। सो अमलता और अमन्दता चन्द्रमा में दोऊ नाहीं यातें उपमेय में अधिकता आए तें वितरेक काहे न होइ। उत्तर॥ जब छीर समुद्र तें चन्द्रमा निकरो ता समय अमल अमन्द रहो। यातें इहाँ पूरन उपमा होइ

है ताको लच्छन । भारती भूषने । दोहा । उपमानरू उपमेय जहँ उपमा वाचक होइ । सह साधारन धर्म के पूरन उपमा सोइ ॥ १ ॥ जथा । मुख सुखकर निसिकर सरिस सफरी से चल नैन । छीन लङ्क हरिलङ्क सी ठाढ़ी श्रैनाँ श्रैन ॥ मुख उपमेय सुखकर धर्म निसिकर उपमान । सरिस वाचक । पुनः सफरी उपमान । से । वाचक । चल धर्म । नैन उपमेय । पुनः छीन धर्म लंक उपमेय हरिलङ्क उपमान । सो वाचक याते पूर्णोपमा । तहाँ प्रश्न कै ब्रह्मा ने अन्यगुन छोड़ि अलँकार में स्तुति करी । ताको अभिप्राय । उत्तर । कंसादिकन के त्रासतें अन्य ठाँव दूषन भरि गए एक प्रभु के निकट भूपन रहो । अलँकार प्रियो विष्णु यह पुरान में लिखते हैं । सो उनको प्रसन्न करनो है यासों अलँकारमय स्तुति करी ब्रह्मा । आगे ब्रज में अवतार लेके शृंगार रस प्रधान लीला करनी है तासों भूषन अर्पन करत हैं । पुनः प्रश्न । पूरन उपमा अलँकार तें काहे क्रम बाँधो । उत्तर । षोड़श कला परिपूर्ण अवतार की इच्छा । अर्थांतरे ।

दोहा । भौंहैं कुटिल कमान सी सर से पैने नैन ।
बेधत ब्रज बालान हीं बंशीधर दिन रैन ॥

इत्यादि जानिए ।"

पूज्य भारतेन्दु जी ने इनके मुख्य सभासदों के नाम एक याददाश्त में इस प्रकार लिखे हैं—

पँडित ईश्वरदत्त जी (ईश्वर कवि), सरदार कवि, गोस्वामी दीनदयाल गिरि, कन्हैयालाल लेखक, पँडित लक्ष्मीशङ्कर व्यास, बाबू कल्यानदास, माधोराम जी गौड़, गुलाबराम नागर और बालकृष्ण दास टकसाली ।

——:o:——

साधु महात्माओं का समागम ।

इनपर उस समय के साधु महात्माओं की भी बड़ी कृपा रहती थी और ये भी सदा उन लोगों की सेवा शुश्रुषा में तत्पर रहते थे । एक पुर्ज़ा उस समय का मुझे मिला है जो अविकल प्रकाशित किया जाता है—

"राम किंकर जी अयोध्या के महन्त जिनका नाम जाहिर हैं आपने भी सुना होगा, बड़े महात्मा हैं सो राधिकादास जी के स्थान पर तीन चार रोज से टिके हैं अभी उनके साथ सहर में गए हैं और चाहिए कि दो तीन घड़ी में आप की भेट को आवें क्योंकि राधिका दास जी की जुबानी आप के गुन सुने और सहस्र नाम की पोथी देखी उत्कंठा मालूम होती है और हैं कैसे 'कौपीनवन्तः खलुभाग्यवन्तः'।

राधिकादासजी, रामकिंकर जी, तुलाराम जी, भागवतदास जी आदि उस समय बड़े प्रसिद्ध महात्मा गिने जाते थे। इन लोगों से इनसे बहुत स्नेह था, वरञ्च इन लोगों से भगवत् सम्बन्धी चुहलबाज़ी भी होती थी। एक दिन इन्हीं में से किसी महात्मा से इन्हों ने कहा कि 'भगवान श्री कृष्णचन्द्र में भगवान श्री रामचन्द्र से दो कला अधिक थीं, अर्थात् इनमें सोलहों कला थीं।" उक्त महानुभाव ने उत्तर दिया "जी हाँ, चोरी और जारी"। कई महात्माओं की कथा भी धूमधाम से हुई थी।

बुढ़वामंगल।

यह हम ऊपर लिख आए हैं कि बाबू हर्षचन्द्र के समय से बुढ़वामङ्गल का कच्छा इनके यहाँ बहुत तयारी के साथ पटता था और बिरादरी में नेवता फिरता था, तथा गुलाबी पगड़ी दुपट्टा पहिर कर यावत् बिरादरी और नौकर आदि कच्छे पर आते थे। वैसी ही तयारी से यह मेला बाबू गोपालचन्द्र के समय में भी होता था। एक वर्ष कच्छे के साथ के कटर पर सँध्या करने के लिये बाबू साहब आए थे और कटर के भीतर सँध्या करते थे। छत पर और सब लोग बैठे थे। सँध्या करके ऊपर आए, सब लोग ताज़ीम के लिये खड़े हो गए। इस हलचल में नाव उलट गई और सब लोग अथाह जल में डूब गए। उस समय उसी नाव पर एक नौकर की गोद में बड़ी कन्या मुकुन्दी बीबी भी थीं। यह दुर्घटना चौसट्टी घाट पर हुई थी। इस घाट पर चतुःषष्टि देवी का

मन्दिर है और होली के दूसरे दिन यहाँ घुरहडी को बहुत बड़ा मेला लगता है । इस घाट पर अथाह जल है और रामनगर के क़िले से टकराकर पानी यहाँ आकर लगता है, इससे यहाँ पानी का बड़ा वेग रहता है; उस पर इनको तैरने भी नहीं आता था;—और भी आपत्ति यह कि लड़के साथ में । त्राहि भगवन, उस समय क्या बीती होगी ! परन्तु रक्षा करने वाले की बाँह बड़ी लम्बी है । उसने सभों को ऐसा उबारा कि प्राणियों की कौन कहे, किसी पदार्थ को भी हानि न होने पाई । बाबू गोपालचन्द्र मेरे पिता बाबू कल्याणदास से लिपट गए । यह बड़े घबराए कि अब दोनों यहीं रहे । परन्तु साहस करके इन्होंने उनको अपने शरीर से छुड़ाकर ऊपर की ओर लौकाया । सौभाग्यवश नौकाएं वहाँ पहुँच गई थीं, लोगोंने हाथों हाथ उठा लिया । मुकुन्दी बीबी अपनी सोने की सिकरी को हाथ से पकड़े नौकर के गले से चिपटी रहीं । निदान सब लोग निकल आए, यहाँ तक कि जितने पदार्थ डूबे थे वे सब भी निकल आए । एक सोने की घड़ी, चाँदी का चश्मे का खाना और बाँह पर बाँधने का एक चाँदी का यन्त्र अब तक उस समय का जल में से निकला हुआ रक्खा है । कविवर गोपालचन्द्र की कवित्वशक्ति उस समय भी स्थगित न हुई और उन्होंने उसी अवस्था में एक पद बनाया अन्तिम पद उसका यह है—

"गिरिधर दास उबारि दिखायो
भवसागर को नमूना"

चार दिन बुढ़वामङ्गल के अतिरिक्त, होली और अपने तथा पुत्रों के जन्मोत्सव के दिन बड़ा जलसा और बिरादरी की जेवनार कराते थे, कि जिसकी शोभा देखनेवाले अब तक भी वर्तमान हैं, और कहते हैं वैसी शोभा अब अच्छे २ विवाह की महफ़िलों में भी नहीं दिखाई देती ।

एक बेर ये हाथी से भी गिरे थे और उसी दिन उस हाथी को काशिराज की भेंट कर दिया ।

———:o:———

गयायात्रा ।

बचपन से श्रीठाकुर जी की सेवा और दर्शन का ऐसा अनुराग

था कि उन्हें छोड़ कर कभी कहीं यात्रा का विचार नहीं करते। केवल पाँच वर्ष की अवस्था में मुण्डन कराने के लिये पिता के साथ मथुरा जी गए थे, तथा श्रीदाऊ जी के मन्दिर में मुण्डन हुआ था और वहाँ से लौट कर श्रीवैद्यनाथ जी गए थे, वहाँ चोटी उतरी थी। स्वतन्त्र होने पर कभी कभी चरणाद्रि श्री महाप्रभु जी के दर्शन को जाते; परन्तु पहिले दिन जाते, दूसरे दिन लौट आते। केवल बाबू हरिश्चन्द्र के जन्मोपरान्त संवत १९०७ में पितृऋण चुकाने के लिये गया गए थे। गया जाने के लिये बड़ी तयारियाँ हुईं। महीनों पहिले से सब पुराणों, धर्मशास्त्रों से छाँट कर एक संग्रह बनवाया गया। रेल थी नहीं, डाँक का प्रबन्ध किया गया। सैकड़ों आदमियों का साथ था। पन्द्रह दिन की गया का विचार करके गए, परन्तु वहाँ जाने पर प्रभुवियोग ने विकल किया। दिन रात रोवें, भोजन न करें, सेवा का स्मरण अहर्निशि रहै। निदान किसी किसी तरह तीन दिन की गया करके भागे रात दिन बराबर चले आए और आकर श्रीचरणदर्शन से अपने को तृप्त किया। इस यात्रा में मेरी माता साथ थीं।

——:o:——

ग्रन्थ।

इनका सबसे पहिला ग्रन्थ वाल्मीकि-रामायण है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनके ग्रन्थ ऐसे अस्त व्यस्त हो गए हैं कि जिनका कुछ पता ही नहीं लगता। केवल पूज्य भारतेन्दु जी के इस दोहे सेः—

"जिन श्रीगिरिधरदास कवि रचे ग्रन्थ चालीस।
ता सुत श्रीहरिचन्द को को न नवावै सीस" ॥

इतना पता लगता है कि उन्होंने चालीस ग्रन्थ बनाए थे, परन्तु उनके नाम या अस्तित्व का पता नहीं लगता।

पूज्य भारतेन्दु जी ने अपनी याददाश्त में इतने ग्रन्थों के नाम लिखे हैं—

१ वाल्मीकि रामायण (सातों काण्ड छन्द में अनुवाद) । २ गर्गसंहिता । ३ भाषा एकादशी की चौवीसों कथा । ४ एकादशी की कथा । ५ छन्दार्णव । ६ मत्स्यकथामृत । ७ कच्छपकथामृत । ८ नृसिंहकथामृत । ९ वावनकथामृत । १० परशुरामकथामृत । ११ रामकथामृत । १२ वलरामकथामृत । १३ बुद्धकथामृत । १४ कल्किकथामृत । १५ भाषा व्याकरण । १६ नीति । १७ जरासन्धवध महाकाव्य । १८ नहुषनाटक । १९ भारतीभूषण । २० अद्भुत रामायण । २१ लक्ष्मी नखसिख । २२ रसरत्नाकर । २३ वार्ता संस्कृत । २४ ककारादि सहस्रनाम । २५ गयायात्रा । २६ गयाष्टक । २७ द्वादश दल-कमल । २८ कीर्तन की पुस्तक "स्तुति पंचाशिका" कवि सरदार कृत टीका का वर्णन ऊपर हो चुका है । इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत स्तोत्रों पर संस्कृत टीका कवि लक्ष्मीराम कृत मुझे मिली हैं—

१ सङ्कर्षणाष्टक । २ दनुजारिस्तोत्र । ३ वाराह स्तोत्र । ४ शिव स्तोत्र । ५ श्री गोपाल स्तोत्र । ६ भगवत्स्तोत्र । ७ श्री रामस्तोत्र । ८ श्री राधास्तोत्र । ९ रामाष्टक । १० कालियकालाष्टक । इनके ग्रन्थों के लुप्त होने का विशेष कारण यह जान पड़ता है कि इन के अक्षर अच्छे नहीं होते थे, इसलिये वे स्वयं पुर्जों पर लिख कर सुन्दर अक्षरों मे नकल लिखवाते और सुन्दर चित्र बनवाते थे । तब मूल कापी का कुछ भी यत्न न होता और ग्रन्थ का शत्रु वही उसका चित्र होता । मैं ने वाल्मीकि-रामायण और गर्गसंहिता की सचित्र कापी बचपन में देखी थी, परन्तु उसे कोई महाशय पूज्य भारतेन्दु जी से ले गए और फिर उन्होंने इसे न लौटाया । कीर्तन की पुस्तक मुन्शी नवलकिशोर के प्रेस से खो गई और "नहुषनाटक" का कुछ भाग "कविवचनसुधा" प्रथम भाग में छपकर लुप्त होगया । खेद है कि पूज्य भारतेन्दु जी की असावधानी ने इनको बहुत हानि पहुँचाई ।

दशावतार कथामृत मानों उन्होंने भाषा में पुराण बनाया था । पुराण के सब लक्षण इसमें हैं । बलिरामकथामृत बहुत ही भारी ग्रन्थ है । वह ग्रन्थ सं० १९०६ से १९०८ तक में पूरा हुआ था । भारतीभूषण अलङ्कार का अद्भुत ग्रन्थ है । अच्छे अच्छे कवि अपने

विद्यार्थियों को यह ग्रन्थ पढ़ाते हैं। नहुषनाटक भाषा का पहिला नाटक है। भाषा व्याकरण-छन्दोवद्ध भाषा का व्याकरण अत्यन्त सुगम और सरल ग्रन्थ है। जरासन्धबध महाकाव्य और रसरत्नाकर अधूरे ही रह गए। इन दोनों को पूज्य भारतेन्दु जी पूरा करना चाहते थे, परन्तु खेद कि वैसा ही रह गया। जरासन्धबध महाकाव्य बहुतही पाण्डित्य पूर्ण वीररसप्रधान ग्रन्थ है। भाषा में यह ग्रन्थ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है। इसकी तुलना के भाषामें विरले ही ग्रन्थ मिलेंगे। इस ढङ्ग का ग्रन्थ केवल कविवर केशवदास कृत रामचन्द्रिका ही है।

इनकी कविता की प्रशंसा फ्रांस देश के प्रसिद्ध विद्वान गार्सिनदी तासी ने अपने ग्रन्थ में की है और डाक्टर ग्रिअर्सन तथा बाबू शिवसिंह ने (शिवसिंह सरोज में) इनकी विद्वता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है।

——:o:——

कविता।

इनकी कविता पाण्डित्यपूर्ण होती थी। इन्हें अलङ्कारपूर्ण श्लेष, जमक इत्यादि कविता पर विशेष रुचि थी। परन्तु नीति शृङ्गार और शान्ति रस की कविता इनकी सरल और सरस भी अत्यन्तही होती थी। हम उदाहरण के लिये कुछ कविताएँ यहां उद्धृत करते हैं—

सवैया—सब केसव केसव केसव के हित के गज सोहते सोभा अपार हैं। जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहिं सीस प्रहार हैं॥ गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै वसुधारन फार हैं। अरि वारन वारन वारन पै सुर वारन वारन वारन वार हैं॥ १॥

मुकरी—अति सरसत परसत उरज उर लगि करत बिहार।
चिन्ह सहित तन को करत क्यों सखि हरि नहिं हार॥१॥

संख्यालङ्कार—गुरुन को शिष्यन पात्र भूमि देवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुन को सन्यासिन को बर जिजमानन

कों सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों ॥ सत्रुन को मित्रन को पित्रन कों जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों । गिरिधर दास दासै स्वामी को अबी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों ॥

यथासंख्य—असतसङ्ग, सतसङ्ग, गुन, गङ्ग, जङ्ग कहुँ देखि ।
भजहु, सहजु, सीखहु सदा, मज्जहु लरहु बिसेखि ॥

अविकृतशब्द श्लेष मूल वक्रोक्ति—मानि कही रमनी सुलै हौं परसत तुव पाय । मानिक हार मनी सु लै देहु पतुरियै जाय ॥ १ ॥ मानत जोगहि सुमति वर पुनि पुनि होति न देह । जोगी मानहिं जोग को नाहिं हम करत सनेह ॥ २ ॥

स्वभावोक्ति—गौनो करि गौनो चहत पिय बिदेस बस काजु । सासु पासु जोहत खरी आँखि आँसु उर लाजु ॥ १ ॥

समस्या पूर्ति—जीवन यैं सगरे जग को हमतें सब पाप औ ताप की हानी । देवन कों अरु पितृन कों नरकों जड़कों हमहीं सुखदानी ॥ जो हम ऐसो कियो तेहि नीच महा सठको मति लै अवसानी । हाय विधाता महा कपटी इहि कारन कूप मैं डोलत पानी ॥ १ ॥ बातन क्यों समुझावति हौ मोहि मैं तुमरो गुन जानति राधे । प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज मैं रीति के कारन साधे। घूँघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे । नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहै जल जाल के बाँधे ॥ २ ॥

जरासन्धवध महाकाव्य से—चले राम अभिराम राम इष धनु टँकारत । दीनबन्धु हरिबन्धु सिन्धु सम बल बिस्तारत ॥ जाके दशसत सिरन मध्य इक सिर पर धरनी । लसति जथा गज सीस स्वल्प सरसप सित बरनी ॥ विक्रम अनँत अँतक अधिक सुजस अनँत अनँत माति । परताप अनँत अनँत गुन लसे अनँत अनँत गति ॥ १ ॥

पद—प्रभु तुम सकल गुन के खानि । हौं पतित तुव सरन आयो पतित पावन जानि ॥ कब कृपा करिहौ कृपानिधि पतितता पहिचानि । दास गिरिधर करत बिनती नाम निश्चै आनि ॥ १ ॥

खड़ी बोली का पद—जाग गया तब सोना क्या रे। जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे॥ ठाकुर से कर नेह अपाना इन्द्रिन के सुख होना क्या रे। जब वैराग ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे॥ दारा सुपन सदन में पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे। हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव में खोना क्या रे॥ दाता जो मुख माँगा देवे तब कौड़ी भर दोना क्या रे। गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे॥ १॥

विदुर नीति से—पावक, बैरी, रोग, रिन सेसहु राखिय नाहिँ। ए थोड़ हू बढ़हिँ पुनि महाजनन सोँ जाहिँ॥ १॥

वाल्मीकिरामायण से—पति देवत कहि नारि कहं और आसरो नाहिँ। स्वर्ग सिढ़ी जानहु यही वेद पुरान कहाहिँ॥ १॥

नीति के छप्पय (स्वहस्त लिखित एक पुर्जे से)—धिक नरेस बिनु देस देस धिक जहँ न धरम रुचि। रुचि धिक सत्य विहीन सत्य धिक बिनु विचार सुचि॥ धिक विचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के। भजनहु धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के॥ मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति। धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहिं गिरिधर पर प्रेम अति॥१

मुझे खेद है कि न तो मैंने इनके सब ग्रन्थों को पढ़ा है और न इतना अवसर मिला कि उत्तमोत्तम कविता छाँटता। यत्किञ्चित उदाहरण के लिये उद्धृत कर दिया और चित्रकाव्य को छापने की काठनता से सर्वथा ही छोड़ दिया है॥

धर्म विश्वास—वैष्णव धर्म पर इन्हेँ ऐसा अटल विश्वास था कि और सब देव देवियोँ की पूजा अपने यहाँ से उठा दी थी. भारतेन्दु जी ने लिखा है कि "मेटि देव देवी सकल छोड़ि कठिन कुल रीतिं। थाप्यो गृह में प्रेम जिन प्रगट कृष्ण पद प्रीति॥" मरने के समय भी घर का कोई सोच न था केवल श्वास भर कर ठाकुर जी के सामने यही कहा था कि "दादा! तुम्हेँ बड़ा कष्ट होगा॥"

———:o:———

रोग और मृत्यु।

बचपन से लोगोँ ने उन्हेँ भङ्ग पीने का दुर्व्यसन लगा दियाथा।

वह अति को पहुँच गया था ऐसी गाढ़ी भाँग पीते थे कि जिसमें सींक खड़ी होजाय । और अन्त में इसी के कारण उन्हें जलोदर रोग हो गया । बहुत कुछ चिकित्सा हुई, परन्तु कोई फल न हुआ । कोठी की ताली और प्रवन्ध राय नृसिंहदास को सौंप गए थे और उन्होंने बाबू गोकुलचन्द्र की नाबालगी तक कोठी को सँभाला था। सं० १९१७ की वैसाख सु० ७ को अन्त समय आ उपस्थित हुआ । पूज्य भारतेन्दु जी और उनके छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र जी को सीतला जी का प्रकोप हुआ था । दोनों पुत्रों को बुलाकर देखकर विदा किया । इन लोगों के हटते ही प्राण पखेरू ने, पयान किया । चारों ओर अन्धकार छा गया, हाहाकार मचगया । पूज्य भारतेन्दु जी कहते थे कि " वह मूर्ति अब तक मेरी आँखों के सामने विराजमान है । तिलक लगाए बड़े तकिए के सहारे बैठे थे । दिव्य कान्ति से मुखमण्डल दीप्त था, मुख प्रसन्न था, देखने से कोई रोग नहीं प्रतीत होता था । हम लोगों को देखकर कहा कि सीतला ने बाग मोड़ दी । अच्छा अब ले जाव । " इनकी अन्त्येष्टि क्रिया एक सम्बन्धी (नन्हूसाव) ने की थी ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म

———:o:———

मि० भाद्रपद शुक्ल ७ (ऋषि सप्तमी) से १९०७ ता: ६ दिसम्बर सन् १८५० को हुआ, जिस समय इनके पूज्य पिता का वियोग हुआ उस समय इन की अवस्था केवल ६ वर्ष की थी, परन्तु "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस लोकोक्ति के अनुसार बालक हरिश्चन्द्र ने पाँच छ वर्ष की अवस्था ही में अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से अपने कविचूड़ामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था। (पिता गोपालचन्द्र) बलिराम–कथामृत की रचना कर रहे थे; बालक (हरिश्चन्द्र) खेलते खेलते पास आ बैठे, बोले हम भी कविता बनावेंगे। पिता ने आश्चर्यपूर्वक कहा तुम्हें उचित तो यही है। उस समय बाणासुर-वध का प्रसंग लिखा जा रहा था। बाल-कवि ने तुरन्त यह दोहा बनाया :—

"लै ब्योंड़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥

पिता ने प्रेमगद्गद होकर प्यारे पुत्र को कण्ठ लगा लिया और अपने होनहार पुत्र की कविता को अपने ग्रंथ में सादर स्थान दिया और आशीर्वाद दिया "तू हमारे नाम को बढ़ावैगा"। हाय! कहाँ है उनकी आत्मा! वह आकर देखै कि उन के पुत्र ने उनका ही नहीं वरन उनके देश का भी मुख उज्ज्वल किया है!

एक दिन अपने पिता की सभा में कवियों को अपने पिता के 'कच्छपकथामृत' के मंगलाचरण के इस अंश पर :—

"करन चहत जस चारु कछु कछुवा भगवान को"

व्याख्या करते देख बालक हरिश्चन्द्र भी आ बैठे। किसी ने "कछु कछु वा उस भगवान को" यह अर्थ कहा, और किसी ने यों कहा "कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को"। बालक हरिश्चन्द्र चट बोल उठे "नहीं नहीं बाबू जी, आपने कुछ कुछ जिस भगवान को छू लिया है उसका जस वर्णन करते हैं" (कछुक छुवा भग-

वान को) बालक की इस नई उक्ति पर सब सभास्थ लोग मोहित हो उछल पड़े और पिता ने सजल नेत्र प्यारे पुत्र का मुख चूमकर अपना भाग्य सराहा ।

इनकी बुद्धि बचपनही से प्रखर और अनुसन्धानकारिणी थी । एक दिन पिता को तर्पण करते देख आप पूछ बैठे "बाबू जी पानी में पानी डालने से क्या लाभ ?" धार्मिकप्रवर बाबू गोपालचन्द्र ने सिर ठोंका और कहा "जान पड़ता है तू कुल बोरैगा" । देव तुल्य पिता के आशीर्वाद और अभिशाप दोनो ही एक एक अंश में यथा समय फलीभूत हुए, अर्थात् हरिश्चन्द्र जैसे कुल-मुखोज्वलकारी हुए, वैसे ही निज अतुल पैतृक सम्पत्ति के नाशकारी भी हुए ।

——:o:——

शिक्षा ।

नौ वर्ष की अवस्था में पितृहीन होकर ये एक प्रकार से स्वतन्त्र हो गए । जिनकी स्वतन्त्र प्रकृति एक समय बड़े बड़े राज-पुरुषों और स्वदेशीय बड़े बड़े लोगों के विरोध से न डरी, उन को बालपन में भी कौन पराधीन रख सकता था, विशेषकर विमाता और सेवकगण ? तथापि पढ़ने के लिये वे कालिज में भरती किए गए । यथा समय कालिज जाने लगे । उस समय अँग्रेज़ी स्कूलों में लड़कों के चरित्र पर विशेष ध्यान रक्खा जाता था । पान खाकर कालिज में जाने का निषेध था । पर परम चपल और उद्धत स्वभाव ये कब मानने लगे थे, पान का व्यसन इन्हें बचपन ही से था; खूब पान खा कर जाते और रास्ते में अपने बाग़ (रामकटोरा) में ठहर कर कुल्ला करके तब कालिज जाते । पढ़ने में भी जैसा चाहिए वैसा जी न लगाते, परन्तु ऐसा कभी न हुआ कि ये परिच्छा में उत्तीर्ण न हुए हों । एक दो बेर के सुनने और थोड़े ही ध्यान देने से इन्हें पाठ याद हो जाता था और इन की प्रखर बुद्धि देख कर अध्यापक लोग चमत्कृत हो जाते थे । उस समय अँग्रेज़ी शिक्षा का बड़ा अभाव था । रईसों में केवल राजा शिवप्रसाद अँग्रेज़ी पढ़े थे, अतएव इनका बड़ा नाम था । ये भी

कुछ दिनों तक उन के पास अँगरेज़ी पढ़ने जाया करते थे । इसी नाते ये सदा राजा साहब को 'पूज्यवर, गुरुवर' लिखते और राजा साहब इन्हें प्रियवर, मित्रवर, लिखते थे । तीन चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम चला । कालिज में अंग्रेज़ी और संस्कृत पढ़ते थे, पर रसिकराज हरिश्चन्द्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था । परन्तु वही प्राचीन ढर्रे शृंगार रस की । उस समय का उनका लिखा एक संग्रह मिला है । जिस में प्रायः शृंगार ही की कविताएं विशेष संग्रहीत हैं, तथा स्वयं भी जो कोई कविता की है तो शृंगार या भक्तिसम्बन्धी ।

जगदीश यात्रा—रुचि परिवर्तन ।

इसी समय स्त्रियों का आग्रह श्री जगदीश-यात्रा का हुआ । सं० १९२२ (स० १८६४-६५) में ये सकुटुम्ब जगदीश यात्रा को चले । यहीं समय इन के जीवन में प्रधान परिवर्तन का हुआ । बुरी या भली जो कुछ बातें इन के जीवन की संगिनी हुईं, उनका सूत्रपात इसी समय से हुआ । पढ़ना तो छूट ही गया था । उस समय तक रेल पूरी पूरी जारी नहीं हुई थी । उस समय जो कोई इतनी बड़ी यात्रा करते तो उन्हें पहुँचाने के लिये जाति कुटुम्ब के लोग तथा इष्टमित्र नगर के बाहर तक जाते थे । निदान इनका का भी डेरा नगर के बाहर पड़ा । नगर के रईस तथा आपस के लोग मिलने के लिये आने लगे । बड़े आदमियों के लड़कों पर प्रायः नगर के अर्थलोलुप लोगों की दृष्टि रहती ही है, विशेष कर पितृहीन बालक पर । अतएव वैसे ही एक महापुरुष इनके पास भी मिलने के लिये पहुँचे । ये वही महाशय थे जिनके पितामह ने बाबू हर्षचन्द्र की नाबालग़ी में इनके घर को लूटा था, और उन्हीं महापुरुष के पिता ने बाबू गोपालचन्द्र की नाबालग़ी का लाभ उठाया था । और अब इन की नाबालग़ी में ये महात्मा क्यों चूकने लगे थे ? अतएव ये भी मिलने के लिये आए । शिष्टाचार की बातें होने पर वे इन को एकान्त में लिवा ले गए और उन्हें दो

अशर्फ़ियाँ देने लगे। यह देख बालक हरिश्चन्द्र अचम्भे में आगए और पूछा "इन अशर्फ़ियों से क्या होगा ?" शुभचिन्तक जी बोले "आप इतनी बड़ी यात्रा करते हैं, कुछ पास रहना चाहिए"। इन्हों ने उत्तर दिया "हमारे साथ मुनीब गुमाश्ते रुपये पैसे सभी कुछ है, फिर इन तुच्छ दो अशर्फ़ियों से क्या होगा ?" शुभचिन्तक जी ने कहा "आप लड़के हैं, इन भेदों को नहीं जानते, मैं आप का पुश्तैनी 'नमकख़ार' हूँ। इस लिये इतना कहता हूँ। मेरा कहना मानिए और इसे पास रखिए, काम लगे तो ख़र्च कीजिएगा नहीं तो फेर दीजिएगा। मैं क्या आप से कुछ माँगता हूँ। आप जानते ही हैं कि आपके यहाँ बहू जी का हुक्म चलता है। जो आपका जी किसी बात को चाहा और उन्हों ने न दिया तो उस समय क्या कीजिएगा ? कहावत है कि 'पैसा पास का जो वक्त पर काम आवै'।" होनहार प्रबल होती है, इसी से उस धूर्त की धूर्तता के जाल में फँस गए। और उन्होंने उस की अशर्फ़ियाँ रखलीं एक ब्राह्मण युवक उनके साथ थे, वही ख़ज़ांची बने। ऋण लेने का यहीं से सूत्रपात हुआ। फिर तो उनकी तबियत ही और हो गई मिज़ाज में भी गरमी आ गई रानीगंज तक तो रेल में गए, आगे बैल गाड़ी और पालकी का प्रबन्ध हुआ। बर्दवान में आकर, किसी बात पर ये मा से बिगड़ खड़े हुए और बोले "हम घर लौट जाते हैं"। इस पर लोगों ने समझा कि इनके पास तो कुछ है नहीं तो फिर ये जायँगे कैसे ? यह सोच कर लोगों ने उनकी उपेक्षा की। बस चट आप उन ब्राह्मण देवता को साथ लेकर चल खड़े हुए, जिन्हें उन्हों ने अशर्फ़ी का ख़ज़ांची बनाया था। बाज़ार में आकर एक अशर्फ़ी भुनाई और स्टेशन पर जा पहुँचे। यह समाचार जब छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र को मिला तब वह सजल-नेत्र स्टेशन पर जाकर भाई से लिपट गए। तब तो हरिश्चन्द्र का स्नेहमय हृदय सम्हल न सका, उसमें भ्रातृस्नेह उछल पड़ा, दोनों भाई गले लग कर खूब रोए, फिर दोनों डेरे पर लौट आए। लौट तो आए पर उसी समय से इन के हृदय में जो स्वतंत्रता का स्रोत उमड़ पड़ा वह फिर न लौटा। धीरे धीरे दोनों अशर्फ़ियाँ ख़र्च हो गईं और फिर ऋण का चसका पड़ा। उन्हीं दो अशर्फ़ियों के सूद ब्याज तथा

बदला बदली में उक्त पुश्तैनी 'नमकख़ार' के हाथ इनकी एक बड़ी हवेली जो पन्द्रह हज़ार रुपये से कम की नहीं है, लगी ।

इसी समय से इनकी रुचि गद्य-पद्य मय कविता की ओर झुकी । वह एक 'प्रवास नाटक' लिखने लगे । परन्तु अभाग्यवश वह अपूर्ण और अप्रकाशित ही रह गया । इसी समय 'झूलत हरीचन्द जू डोल' 'हम तो मोल लए या घर के', आदि कविताएं बनीं और इसी समय इन्हों ने बंगला सीखी ।

श्री जगन्नाथ जी के सिंहासन पर चिरकाल से भैरव-मूर्ति भोग के समय बैठाई जाती थी । मूर्ख पंडों का विश्वास था कि बिना भैरव-मूर्ति के श्री जगन्नाथ जी की पूजा साँग हो ही नहीं सकती । इन्हें यह बात बहुत खटकी । इन्हों ने नाना प्रमाणों से उसका विरोध किया । निदान अन्त में भैरव-मूर्ति को वहाँ से हटा ही छोड़ा 'तहक़ीक़ात पुरी की तहक़ीक़ात !' इसी झगड़े का फल है ।

स्कूल का स्थापन ।

उस यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देश-हित की ओर विशेष फिरी । इनको निश्चय हुआ कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृभाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है । उस समय नगर में कोई पाठशाला न थी । सरकारी पाठशाला या पादरियों की पाठशाला में लड़कों को भेजना और फ़ीस देकर पढ़ाना साधारण लोगों के लिये कठिन था । इसलिये इन्हों ने अपने घर पर लड़कों को पढ़ाना आरम्भ किया । दोनों भाई मिल कर लड़कों को पढ़ाते थे । फ़ीस कुछ देनी नहीं पड़ती थी । पुस्तक स्लेट आदि भी बिना मूल्य ही दी जाती थी । इस कारण धीरे धीरे लड़कों की संख्या बढ़ने लगी और इनका भी उत्साह बढ़ा । तब एक अध्यापक नियुक्त कर दिया जो लड़कों को पढ़ाने लगा । परन्तु थोड़े ही दिनों में लड़कों की इतनी संख्या अधिक हुई कि सन १८६७ ई० में नियमित रूप से "चौखम्भा स्कूल" स्थापित किया और उसका सब भार अपने सिर रक्खा । उसमें अधिकांश लड़के

बिना फ़ीस दिए पढ़ने लगे, पुस्तकादि भी बिना मूल्य वितरित होने लगीं, यहां तक कि अनाथ लड़कों को खाना कपड़ा तक मिल जाया करता था। इस स्कूल ने काशी ऐसे नगर में अंग्रेज़ी शिक्षा का कैसा कुछ प्रचार किया, यह बात सर्व साधारण पर विदित है। पहिले यह 'अपर प्राइमरी' था, किन्तु भारतेन्दु के अस्त होने पर 'मिडिल' हुआ थोड़े दिन तक हाई स्कूल भी रहा परन्तु सहायता न होने से फिर मिडिल हो गया।

हिन्दी उद्धार—व्रत का आरम्भ "कविवचनसुधा" का जन्म।

मातृभाषा का प्रेम और कविता की रुचि तो बालकपन ही से इनके हृदय में थी। अब उसके भी पूर्ण प्रकाश का समय आया। कवि, पण्डित और विद्यारसिकों का समारम्भ तो दिन रात ही होता रहता था, परन्तु अब यह रुचि 'कविवचनसुधा' रूप में प्रकाश रूप से अंकुरित हुई। सन १८६८ ई० में 'कविवचनसुधा' मासिक पत्र के आकार में निकला। प्राचीन कवियों की कविताओं का प्रकाश ही इसका मुख्य उद्देश्य था। कवि देवकृत 'अष्टयाम', दीन-दयाल गिरिकृत 'अनुरागबाग', चन्दकृत 'रायसा', मलिक मुहम्मदकृत 'पद्मावत', 'कबीर की साखी', बिहारी के दोहे', गिरिधरदास कृत 'नहुषनाटक', तथा शेख़सादी कृत 'गुलिस्ताँ' का छन्दोमय अनुवाद आदि ग्रन्थ अंशतः प्रकाशित हुए। परन्तु केवल इतने ही से संतोष न हुआ। देखा कि बिना गद्य-रचना इस समय कुछ उपकार नहीं हो सकता। इस समय और प्रांत आगे बढ़ रहे हैं, केवल यही प्राँत सब से पीछे है, यह सोच देशभक्त हरिश्चन्द्र ने देशहित-व्रत धारण किया और "कविवचनसुधा" को पाक्षिक, फिर साप्ताहिक कर दिया तथा राजनैतिक, सामाजिक आदि आन्दोलन आरम्भ कर दिया और "कविवचनसुधा" का सिद्धान्त वाक्य यह हुआ—

"खल गनन सों सज्जन दुखी
  मति होहिं, हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटैं, स्वत्व निज
  भारत गहै, कर दुख बहै॥

बुध तजहिं मत्सर, नारि नर
　　सम होहिं, जग आनँद लहैं।
तजि ग्रामकविता, सुकविजन की
　　अमृत बानी सब कहैं ॥"

यद्यपि इस समय इन बातों का कहना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता है, परन्तु उस अंधपरम्परा के समय में इन का प्रकाश्य रूप से इस प्रकार कहना सहज न था। नव्य शिक्षित समाज को 'हरि-पद मति रहै' कहना जैसा अरुचिकर था, उससे बढ़ कर पुराने 'लकीर के फकीरों' को 'उपधर्म छूटै' कहना क्रोधोन्मत्त करना था। जैसा ही अँग्रेज़ हाकिमों को 'स्वत्व निज भारत गहैं, कर (टैक्स) दुख बहै' कहना कर्णकटु था, उससे अधिक 'नारि नर सम होहिं' कहना हिन्दुस्तानी भद्र समाज को चिढ़ाना था। परन्तु वीर हरिश्चन्द्र ने जो जी में ठाना उसे कह ही डाला, और जो कहा उसे आजन्म निवाहा भी। इन्हीं कारणों से वह गवर्नमेण्ट के क्रोध-भाजन हुए, अपने समाज में निन्दित हुए और समय समय पर नव्य समाज मे भी बुरे बने, परन्तु जो व्रत उन्होंने धारण किया उसे अन्त तक नहीं छोड़ा, यहां तक कि 'कविवचनसुधा' से अपना सम्बन्ध छोड़ने पर भी आजन्म यही व्रत रक्खा। 'विद्यासुन्दर' नाटक की अवतारणा भी इसी समय हुई। नाना प्रकार के गद्य पद्यमय ग्रन्थ बनने और छपने लगे। उस समय हिन्दी का कुछ भी आदर न था। इन पुस्तकों और इस समाचार पत्र को कौन मोल लेता और पढ़ता? परन्तु देशभक्त उदार हरिश्चन्द्र को धन का कुछ भी मोह न था। वह उत्तमोत्तम कागज़ पर उत्तमोत्तम छपाई में पुस्तकें छपवा कर नाम मात्र को मूल्य रखकर विना मूल्य ही सहस्राधिक प्रतियाँ बाँटने लगे। उन के आगे पात्र अपात्र का विचार न था; जिसने माँगा उसने पाया जिसे कुछ भी सहृदय पाया उसे उन्हों ने स्वयं दिया। यह प्रथा बाबू साहब की आजन्म रही। उन्होंने लाखों ही रुपये पुस्तकों की छपाई में व्यय करके पुस्तकें बिना मूल्य बाँट दी और इस प्रकार से हिन्दी के प्रेमियों की सृष्टि की और हिन्दी पढ़ने वालों की संख्या बढ़ाई।

गवर्न्मेण्ट मान्य ।

:o:

इसी समय आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का नया नियम बना था। ये भी अपने और मित्रों के साथ आनरेरी मैजिस्ट्रेट (सन् १८७० ई० में) चुने गए। फिर म्युनिसिपल कमिश्नर भी हुए। हाकिमों में इनका अच्छा मान्य होने लगा। परन्तु ये निर्भीत चित्त से यथार्थ बात कहने या लिखने में कभी चूकते न थे और इसी मे दूसरे की बढ़ती से जलने वालों को 'चुग़ली' करने का अवसर मिलता था। इस समय भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ़ एडिन्बरा भारत सन्दर्शनार्थ आए। काशी में इसका महामहोत्सव हुआ। इस महोत्सव के प्रधान सहाय यही थे। इन के घर की सजावट की शोभा आज तक लोग सराहते हैं, स्वयं ड्यूक ने इसकी प्रशंसा की थी। ड्यूक को नगर दिखाने का भार भी इन्हीं पर अर्पित किया गया था। इस समय सब पण्डितों से कविता बनवा और 'सुमनोऽञ्जलि' नामक पुस्तक में छपवा कर इन्हों ने राजकुमार को समर्पण की थी। इस ग्रन्थ पर महाराज रीवाँ और महाराज विजयनगरम् बहादुर ऐसे प्रसन्न हुए थे कि इन्हों ने इस के रचयिता पण्डितों को बहुत कुछ पारितोषिक बाबू साहब के द्वारा दिया था। इसी समय पण्डितों ने भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये एक प्रशंसापत्र बाबू साहब को दिया था जिस का सार मर्म यह था—

"सब सज्जन के मान को, कारन एक हरिचन्द ।
जिमि स्वभाव दिन रैन को, कारन एक हरिचन्द ॥"

बाबू साहब की गुणग्राहकता पण्डित मंडली के इन वाक्यों से प्रत्यक्ष विदित होती है। वास्तव में इन्हें अपनी प्रतिष्ठा का उतना ध्यान न था जितना दूसरे उपयुक्त सज्जनों के सम्मानित करने का।

इस समय ये गवर्न्मेण्ट के भी कृपापात्र थे। 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'बालाबोधिनी' की सौ सौ प्रतियां शिक्षा-विभाग में ली जाती थीं। 'विद्या सुन्दर' आदि की सौ सौ प्र-

तियाँ ली गईं। उसी समय ये पञ्जाब युनिवर्सिटी के परीक्षक नियुक्त हुये।

'कविवचनसुधा' का आदर न केवल इस देश में वरञ्च योरप में भी होने लग गया था। सन् १८७० ई० में फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान गार्सन दी तासी ने अपने प्रसिद्ध पत्र "ली लैंगुआ डेस हिन्दुस्तानिस" में मुक्तकण्ठ से बाबू साहब और 'कविवचनसुधा' की प्रशंसा की थी।

———:o:———

चन्द्रिका और बालाबोधिनी।

परन्तु देशहितैषी हरिश्चन्द्र इन थोथे सम्मानों में भूलकर अपने लक्ष्य से चूकने वाले न थे। इन्हों ने देखा कि बिना मासिकपत्रों के निकाले और अच्छे अच्छे सुलेखकों के प्रस्तुत किए भाषा की यथार्थ उन्नति न होगी। यह सोच उन्हें केवल 'कविवचनसुधा' से संतोष न हुआ, और सन् १८७३ ई० में हरिश्चन्द्र मैगज़ीन" का जन्म हुआ। ८ संख्या तक इस की निकली, फिर यही 'हरिश्चन्द्रचन्द्रिका के रूप में निकलने लगा। मैगज़ीन के ऐसा सुन्दर पत्र आज तक हिन्दी में नहीं निकला। जैसाही सुन्दर आकार वैसाही काग़ज़, वैसी ही छपाई और उस से कहीं बढ़ कर लेख। उस समय तक कितने ही सुलेखकों को उत्साह देकर बाबू साहब ने प्रस्तुत कर लिया था। मैगज़ीन के लेख और लेखक आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। हरिश्चन्द्र का 'पाँचवाँ पैगम्बर' मुन्शीज्वाला प्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', मुन्शीकमला प्रसाद का 'रेल का विकट खेल', आदि लेख आज तक लोग चाह के साथ पढ़ते हैं। लाला श्रीनिवास दास, बाबू काशीनाथ, बाबू गदाधरसिंह, बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह, पण्डित ढुंढिराजशास्त्री, श्रीराधाचरणगोस्वामी, पण्डित बद्रीनारायण चौधरी, राव कृष्णदेवशरण सिंह, पण्डित बापूदेव शास्त्री, प्रभृति विद्वज्जन इसके लेखक थे। इसी समय सन् १८७४ ई० में इन्हों ने स्त्रीशिक्षा के निमित्त 'बालाबोधिनी' नाम की मा-

मिकपत्रिका भी निकाली, जिस के लेख श्रोजनोचित होते थे। यही समय मानो नवीन हिन्दी की सृष्टि का है। यद्यपि भारतेन्दु जी ने सन् १८६४ ई० से हिन्दी गद्य पद्य का लिखना आरम्भ किया था और सन् १८६८ में 'कविवचनसुधा' का उदय हुआ, परन्तु इसे स्वयं भारतेन्दु जी हिन्दी के उदय का समय नहीं मानते। वह मैगज़ीन के उदय (सन् १८७३ ई०) से ही हिन्दी का पुनर्जन्म मानते हैं। उन्हों ने अपने 'कालचक्र' नामक ग्रन्थ में लिखा है "हिन्दी नये चाल में ढली (हारिश्चन्द्री हिन्दी *) सन् १८७३ ई०।" वास्तव में जैसी लालित्यमय हिन्दी इस समय से लिखी जाने लगी वैसी पहिले न थी।

———:o:———

पेनी रीडिङ्ग

इसी सयम इन्हों ने 'पेनीरीडिङ्ग (Penny Reading) नामक समाज स्थापित किया था जिस में स्वयं भद्र लोग तरह तरह के अच्छे अच्छे लेख लिख कर लाते और पढ़ते थे। मैगजीन के प्रायः सभी अच्छे अच्छे लेख इस समाज में पढ़े गए थे। स्वयं भारतेन्दु जी की दो मूर्तियाँ आज तक आखों के सामने घूमती हैं—एक तो श्रान्त पथिक बनकर आना और गठरी पटक पर फैला कर बैठ जाना आदि, और दूसरी पाँचवें पैग़म्बर की मूर्ति। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुत से अच्छे अच्छे खेल लिखे गए। इसी समय के पीछे 'कर्पूरमंजरी' 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली' की रचना हुई, जो कि सच पूछिए तो हिन्दी की टकसाल हैं। जैसा ही अपने ग्रन्थों पर इन्हें स्नेह था उस से कहीं बढ़ कर इनका प्रेम दूसरे उपयुक्त ग्रन्थकारों पर था। कितने ही नवीन और प्राचीन ग्रन्थ इनके व्यय से मुद्रित और बिना मूल्य वितरित हुए। वास्तव में यदि हरिश्चन्द्र सरीखा उदार हृदय, रुपये को मट्टी समझने वाला, गुणग्राही नायक हिन्दी की पतवार को

* खेद का विषय है कि (हरिश्चन्द्री हिन्दी) इतना लेख जो स्वयं भारतेन्दु जी ने लिखा था उसे कालचक्र छपने के समय खड्गविलास प्रेस वालों ने छोड़ दिया है।

इस समय न पकड़ता और सब प्रकार से स्वार्थ छोड़कर तन मन धन से इस की उन्नति में न लग जाता, तो आज दिन हिन्दी का इस अवस्था पर पहुँचना कठिन था। हरिश्चन्द्र ने हिन्दी तथा देश के लिये सारे संसार की दृष्टि में अपने को मिट्टी कर दिया।

——:o:——

उदारता, ऋण।

उस समय के 'साहित्यसंसार' की कुछ अवस्था आप लोगों ने सुनी। अब कुछ 'व्यावहारिक संसार, में भी हरिश्चन्द्र को देख लीजिए। जगदीश यात्रा के पीछे उदारहृदय हरिश्चन्द्र का हाथ खुला। हम ऊपर कहही चुके हैं कि बड़े आदमियों के लड़कों पर धूर्तों की दृष्टि रहती ही है, अतः इन्हें भी लोगों ने घेरा। एक तो यह स्वाभाविक उदार, दूसरे इनका नवीन वयस, तीसरे यह रसिकता के आगार, फिर क्या था, धन पानी की भाँति बहने लगा। एक ओर साहित्य सेवा में रुपए लग रहे हैं, दूसरी ओर दीन दुखियों की सहायता में तीसरे देशोपकारक कामों के चन्दों में चौथे प्राचीन रीति के धर्म कार्यों में और पाँचवें यौवनावस्था के आनन्द विहारों में। इन सभों से बढ़ कर द्रव्य की ओर इनकी दृष्टि न रहने के कारण, अप्रबन्ध तथा अर्थलोलुप विश्वासघातकों के चक्र ने इनके धन को नष्ट करना आरम्भ कर दिया। एक धार से बहने पर तो बड़े बड़े नदी नद सूख जाते हैं, तो फिर जिसके शत-धार हों उसका कौन ठिकाना! घर के शुभचिन्तकों ने इन्हें बहुत कुछ समझाया, परंतु कौन सुनता था? स्वयं काशीराज महाराज ईश्वरी-प्रसाद नारायण सिंह बहादुर ने कहा "बबुआ! घर को देख कर काम करो"। इन्होंने निर्भीत चित्त हो उत्तर दिया "हुजूर! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा"। महाराज अवाक्व रह गए। शौक़ इन्हें संसार के सौन्दर्य मात्र ही से था। गाने बजाने, चित्रकारी, पुस्तक संग्रह, अद्भुत पदार्थों का संग्रह (Museum), सुगन्धि की वस्तु, उत्तम, कपड़े, उत्तम खिलौने, पुरातत्व की वस्तु, लैम्प, आलबम, फोटोग्राफ़ इत्यादि सभी प्रकार की वस्तु-

ओं का ये आदर करते और उन्हें संग्रहीत करते थे। इन के पास कोई गुणी आजाय तो वह विमुख कभी न फिरता। कोई मनोहर वस्तु देखी और द्रव्य व्यय के विचार विना चट उसका संग्रह किया। वालिग होते होते इन्होंने लाखों रुपये व्यय कर डाले। लोगों ने देखा कि इनके हाथ में यदि कुवेर का भण्डार भी होगा तो रहने न पावेगा; इसलिये इस घर की रक्षा का उपाय इनका भाग अलग कर देना ही है। अतएव ता० २१ मार्च सन् १८७० ई० को दोनों भाइयों में तकसीमनामा हुआ। जो लाखों रुपए अब तक व्यय हो चुके थे उसे छोड़ कर अब जो बचा था उसमें तीन सम भाग हुए, दो दोनों भाइयों का और तीसरा श्री ठाकुर जी का। यह ठाकुर जी लगभग ८०, ९० वर्ष से इनके यहाँ स्थापित हैं और इनकी सेवा श्री वल्लभकुलस्थ सेवा की रीति पर होती है। जिसका सारा संसार अपना ही कुटुम्ब है, और जिसे सारे संसार की सम्पत्ति भी व्यय करने के लिये थोड़ी है, उसके लेखे यह छोटा भाग क्या था? देखते ही देखते धन घटने और ऋण बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में सब नकदी धन की इतिश्री हो गई। फिर जायदाद रिहन पड़ने लगीं। बनारस के 'शाइलाकों' ने एक एक देकर तीन तीन की हुँडियाँ लिखवानी आरम्भ कीं एक महाशय ने एक कटर (नाव) और कुछ थोड़ा सा रुपया देकर इनसे तीन हज़ार की हुण्डी लिखवा ली, और उसीकी सबसे पहिले इनपर नालिश हुई। उस समय सुप्रसिद्ध सर सैयद अहमद ख़ाँ बहादुर बनारस के सदरआला थे, उन्हीं के यहाँ नालिश हुई। सैयद साहब सब कुछ वृत्तान्त सुन चुके थे। एक रईस के घर का बिगड़ना, विशेषकर भारतहितैषी हरिश्चन्द्र का विपदग्रस्त होना, उसी व्रत में व्रती सैयद साहब को बहुत क्लेशकर हुआ। उन्होंने चाहा कि महाजन का जितना मूल-धन है उसीकी डिक्री दी जाय। यह विचारकर उन्होंने बाबू साहब को आदर के साथ अपने बग़ल में बुलाकर आसन दिया और पूछा 'आपने असिल में इनसे कितना रुपया पाया?' प्रशस्त हृदय सत्यसन्ध हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया 'पूरा रुपया पाया है'। सैयद साहब ने पूछा जो 'कटर इन्होंने लगा दिया है वह कितने का है?' आप बोले 'जितने का मैंने लेना स्वीकार कर

लिया'। सैयद साहब ने टेबुल पर हाथ पटककर कहा 'बाबू साहब, आप भूलते हैं, ज़रा बाहर घूम आइए; समझ बूझकर उत्तर दीजिए'। बाहर आए तब वकीलों ने, घर के लोगों ने, और इष्ट मित्रों ने बहुत कुछ समझाया कि जितना पाया है आप उतना ही कह दें। इसपर आप चुप रहे। फिर इजलास पर गए और पूछे जाने पर आपने फिर वही उत्तर दिया। सैयद साहब खेद प्रकाश करने लगे तो आप बोले 'सुनिए सैयद साहब! मैं अपने धर्म और सत्य को साधारण धन के लिये नहीं बिगाड़ने का; मुझसे इस महाजन ने ज़बर्दस्ती हुण्डी नहीं लिखवाई और न मैं बच्चा ही था कि समझता न था; जब कि मैंने अपनी ग़रज़ से समझ बूझ कर उसका मूल्य तथा नज़राना आदि स्वीकार कर लिया, तो क्या अब देने के भय से मैं उस सत्य को भंग कर दूँ?" धन्य हरिश्चन्द्र धन्य! 'सत्य हरिश्चन्द्र' लिखने के उपयुक्त पात्र तुम्हीं थे! ये वाक्य तुम्हारी ही लेखनी से निकलने योग्य थे—

"चन्द टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥"

यह दृढ़ता और यह सत्यता उनकी अन्त समय तक रही। वह पास द्रव्य न होने से दे न सकें परन्तु अस्वीकार कभी नहीं कर सकते थे। थोड़े ही दिनों में उनकी सारी पैतृक सम्पत्ति जाती रही और वह धन खोने के कारण 'नालायक़' समझे जाने लगे। इनके मातामह की लाखों की सम्पत्ति थी, जिसके उत्तराधिकारी यही दोनों भाई थे। इनकी मातामही ने ५ मे सन् १८६२ ई० को इन दोनों भाइयों के नाम अपनी समग्र सम्पत्ति का वसीयतनामा लिख दिया था। परन्तु अब तो ये नालायक़ ठहरे; इनके हाथ जाने से कोई सम्पत्ति बच न सकैगी, बड़ों का नाम निशान मिट जायगा, इसलिये १४ एप्रिल सन् १८७४ ई० को मातामही ने दूसरा वसीयतनामा लिखा, जिसके अनुसार इन्हें कुछ भी अधिकार न देकर सर्वस्व छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र को दिया। निस्पृह हरिश्चन्द्र को न पहिले वसीयतनामे से सम्पत्ति पाने का हर्ष था, न इसके अनुसार उसके खोने का खेद

हुआ । वकीलों की सम्मति से हिन्दू अधीरा स्त्री का इन्हें भाग-रहित करना सर्वथा क़ानून के विरुद्ध था, इसमें स्वयं इनके स्वीकार की आवश्यकता थी; अतएव २८ अक्तूबर सन् १८७८ ई० को मातामही ने एक बख़्शिशनामा छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र के नाम लिख दिया और उदार हृदय हरिश्चन्द्र ने उस पर अपनी स्वीकृति करके हस्ताक्षर कर दिया । जिस स्वर्गीय हरिश्चन्द्र को सुमेरु भी उठाकर किसी दीन दुखी को देने में संकोच न होता, उसे इस तुच्छ सम्पत्ति को अपने सहोदर छोटे भाई को देना क्या बड़ी बात थी ! कहने के साथ हस्ताक्षर कर दिया । इस बख़्शिशनामे के अनुसार इन्हें केवल चार हज़ार रुपया मिला था । इस प्रकार थोड़े काल में नगरसेठ हरिश्चन्द्र राजा हरिश्चन्द्र की भाँति धन-हीन हरिश्चन्द्र हो गए । 'सत्य हरिश्चन्द्र' की रचना के समय पण्डित शीतला प्रसाद त्रिपाठी जी ने सत्य कहा था कि—

"जो गुन नृप हरिचन्द में, जगहित सुनियत कान ।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान ॥

परन्तु इतना होने पर भी इन की उदारता या इन के अपरिमित व्यय में कभी कमी न हुई । मरने के समय तक ये हज़ारों ही रुपए महीने में व्यय करते थे और वह परमेश्वर की कृपा से कहीं न कहीं से आही जाते थे। सम्पत्तिनाश के पीछे ये बीस बाईस वर्ष और जीए, इतने समय में इन्होंने कम से कम तीन चार लाख रुपये व्यय किए, और लाखों ही रुपये ऋण किए, परंतु जिस जगतपिता जगदीश्वर की सन्तान के उपकार के लिये इन का धन व्यय होता था उस की कृपा से न तो कभी इन का हाथ रुका और न मरने के समय ये ऋणी ही मरे ।

———:o:———

हिन्दी के राजभाषा बनाने का उद्योग ।

अब फिर साधारण हितकर कार्यों तथा साहित्य चर्चा की ओर झुकिए । जब विद्यारसिक सर विलियम म्योर की लाट-गीरी का समय आया, उस समय हिन्दी को राजभाषा बनाने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया गया, परन्तु सफलता न हुई ये इस उद्योग में प्रधान थे । सभाएँ की थीं, प्रार्थनापत्र भेजे

में समाचार पत्रों में आन्दोलन किया था। हिन्दी के उत्तम ग्रन्थों के लिये पारितोषिक देने की व्यवस्था की गई, परन्तु उस में भी सिफ़ारिश की बाज़ार गर्म हुई। "रत्नावली", 'उत्तररामचरित्र' आदि के अनुवाद ऐसे भ्रष्ट निकले कि हिन्दी साहित्य को लाभ के बदले बड़ी हानि पहुँची। उन अनुवादकों को बहुत कुछ पारितोषिक दिया गया, किन्तु उत्तम ग्रन्थों की कुछ भी पूछ न की गई। केम्पसन साहब उस समय शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर थे, राजा शिवप्रसाद उन के कृपापात्र थे। इधर राजा साहब का हृदय अपने सामने के एक 'छोकरे' की उन्नति से जला हुआ था, उधर बाबू साहब का हृदय 'हाकिमी' अन्याय से कुढ़ गया था; दूसरा एक कारण राजा साहब से इन के विरोध का यह हुआ कि राजा साहब ने फ़ारसी आदि मिश्रित खिचड़ी हिन्दी की सृष्टि कर के उसे चलाना चाहा, और बाबू साहब ने शुद्ध हिन्दी लिखने का मार्ग चलाया और सर्व साधारण ने इसी को रुचि के साथ ग्रहण किया। अब इसे रोकने और उसे चलाने का उपाय गवर्मेण्ट की शरण बिना असम्भव जान राजा साहब ने हाकिमों को उधर ही झुकाया। यही एक प्रधान कारण उस समय हिन्दी राजभाषा न होने का भी हुआ था। यदि भाषा का झगड़ा न हो कर अक्षरों ही का होता तो सम्भव था कि सफलता हो जाती।

इसके पीछे एजूकेशन कमीशन के समय भी बड़ा उद्योग किया था, तथा प्रयाग हिन्दू समाज के पूरे सहायक थे जिसने इस विषय में बड़ा उद्योग किया था।

गवर्मेण्ट का कोप।

बाबू साहब का स्वभाव कौतुकप्रिय और रहस्यमय तो था ही। इन्हों ने तरह तरह के पंच लिखने आरम्भ किए। इधर हाकिमों के कान भरे जाने लगे। एक लेख 'लेवी प्राणलेवी' तो निकला ही था, जिस में लेवी दर्बार में हिन्दुस्तानी रईसों की दुर्दशा का वर्णन था; दूसरा एक 'मर्सिया निकला जिस का कटाक्ष सर विलियम म्योर पर बढाया गया। बस, फिर क्या था, बरसों की भरी भराई बात निकल पड़ी, गवर्मेण्ट की कोपदृष्टि इन पर पड़ी। इस लेख के कारण 'कविवचनसुधा', जो गवर्मेण्ट लेती थी,

रुग्न हुए तब उनकी आरोग्य कामना के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई, कविता बनी । जब महारानी किसी दुष्ट की गोली से बचीं तब इन्हों ने महा महोत्सव मनाया, जिस की सराहना स्वयं भारतेश्वरी ने की । जातीय संगीत (National Anthem) के लिये जो प्रतिष्ठित कमेटी बनी, उसके ये सभ्य हुए और उसका इन्हों ने अनुवाद किया । ड्यूक आफ़ अलबेनी की मृत्यु पर इन्हों ने शोक प्रकाशक महासभा की । प्रति वर्ष महारानी की वर्षगाँठ पर ये अपने स्कूल का वार्षिकोत्सव करते थे । निदान भारतेश्वरी के कोई सुख या दुःख का ऐसा अवसर न था जब इन्हों ने अपनी सहानुभूति न प्रकाश की हो—हाँ साथ ही ये 'भारतभिक्षा' ऐसे ग्रन्थों के द्वारा अपनी उदार सरकार से 'भिक्षा' अवश्य माँगते थे; वह चाहे भले ही राजद्रोह समझा जाय । यों तो विरोधियों को ड्यूक आफ् अलबेनी के अकाल ग्रसित होने पर इनका शोक प्रकाशक सभा करना भी राजद्रोह सुझाई पड़ा उन महापुरुषों ने सभा को अपरिणामदर्शी हाकिम की सहायता से रोक दिया, जिस के लिये भारतेन्दु से राजा शिवप्रसाद के द्वारा काशीराज से भी झगड़ा हो गया और बड़े बखेड़े के पीछे तब फिर से सभा हुई । हम इन की राजभक्ति के विषय में और कुछ नहीं कहा चाहते, वरन् इस का विचार पाठकों के ही उदार और न्यायपूर्ण निर्णय पर छोड़ते हैं ।

---:o:---

समाज सुधार ।

हमारे पाठकों ने इन्हें उस समय के साहित्य संसार, व्यावहारिक वा पारिवारिक संसार और राजकीय संसार में देखा, अब कुछ सामाजिक संसार में भी देखैं । इन्हों ने हिन्दू समाज वैश्य-अग्रवाल जाति में जन्म ग्रहण किया था और धर्म श्री वल्लभीय वैष्णव था । जो समय इन के उदय का था वह इस प्रान्त में एक विलक्षण सन्धि का समय था । एक ओर पुरानी लकीर के फ़क़ीरों का ज़ोर, दूसरी ओर नव्य समाज की नई

रोशनी का विकाश। पुराने लोग पुरानी बातों से तिलमात्र भी हटने से चिढ़ने और नास्तिक, किरिस्तान, भ्रष्ट आदि की पदवी देते: नए लोग एक बारगी पुराने लोगों और पुरानी रीति नीति को रसातल भेज. ईश्वर के अस्तित्व में भी सन्देह करनेवाले थे। हरिश्चन्द्र इन दोनों के बीच विषम समस्या में पड़े। प्राचीन मर्यादावाले बड़े घराने में जन्म लेने के कारण प्राचीन लोग इन्हें जामा पगड़ी पहिना तिलक लगाकर परम्परा-गत चाल की ओर ले जाना चाहते थे। और नवीन सम्प्रदाय इन के बुद्धि का विकाश तथा रुचि का प्रवाह देखकर इन से प्राचीन धर्म और प्राचीन सम्प्रदाय को तिरस्कृत करने की आशा करते थे। परन्तु दोनों ही अंशतः निराश हुए। इन का मार्ग ही कुछ निराला था, इन्हें गुण से प्रयोजन था, ये सत्य के अनुगामी थे। किसी का भी क्यों न हो दोष देखा और मुक्तकंठ हो कह दिया. असत्य का लेश आया और पूर्ण विरोधी हुए। हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म, हिन्दू साहित्य इन को परम प्रिय था। श्रीवल्लभीय वैष्णव सम्प्रदाय के पूरे अनुगामी थे। जाति भेद को मानकर अपनी वैश्य जाति के ऊपर पूर्ण प्रेम रखते थे, परन्तु साथ ही बुरी बातों की निन्दा डंके की चोट कर देते थे; निःशङ्क हो कर ऐसे ऐसे वाक्य लिख देते थे—

"रचि बहु विधि के वाक्य पुरानन माहिँ घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए॥
विधवा व्याह निषेध कियो व्यभिचार प्रचारयो।
रोकि विलायत गयन कूप मंडूक बनायो॥
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई॥
ईश्वर सोँ सब विमुख किए हिन्दुन घबराई।
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाय॥
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाय"।

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" में लिख दिया।—

"पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के वृन्द।
गौतम पियत अनन्द सोँ पियत अग्र के नन्द"॥

"प्रेमयोगिनी" में मन्दिरों तथा तीर्थवासी ब्राह्मणों आदि का रहस्योद्‌घाटन पूरी रीति पर कर दिया। " अङ्गरेज़-स्तोत्र " लिखा, जिस का अपढ़ समाज में उलटा फल फला कि यह तो 'किरिस्तान' हो गए। जैनमन्दिर में जाने के कारण लोग नास्तिक, धर्मबहिर्मुख कहकर निन्दा करने लगे, (इसी पर " जैन-कुतूहल " बना)। नवीन वयस, रसिकतामय स्वभाव, विलासप्रियता, परम स्वतन्त्र प्रकृति—निदान चारो ओर से लोग इन की चाल व्यवहार पर आलोचना करते और कटाक्षों और निन्दा की बौछारों का ढेर लगा देते थे। कोई कहता "दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन, बस हो गया"; कोई कहता "पढ़िन का है...दुइ चार बात सीख लिहिन, किरिस्तानीमते करैं" । ऐसी बातों से हरिश्चन्द्र का हृदय व्यथित होता था। उन्होंने निज चरित्र तथा उस समय की अवस्था दिखाने के लिये " प्रेम-योगिनी " नाटक लिखना आरम्भ किया था जो अधूरा ही रह गया, परन्तु उस उतनेही से उस समय का बहुत कुछ पता लगता है। उसमें इन्होंने अपने मन का क्षोभ दिखलाया है। इस इतने विरोध और निन्दावाद पर भी आश्चर्य की बात यह है कि लोग इन्हें अजातशत्रु कहते हैं और यह उपाधि इनकी सर्ववादि-सम्मत है।

——:o:——

आदि कविता ।

अब हम संक्षेपतः इनके उन कामों का वर्णन करते हैं जिन्होंने इन्हें लोकप्रिय बनाया। यह हम ऊपर कह ही आए हैं कि इन्होंने अत्यन्त बाल्यावस्था से कविता करनी आरम्भ की थी। अब इन की कुछ आदि कवितायें उद्धृत करते हैं। सब से पहिला पद यह बनाया :—

"हम तो मोल लिए या घर के।
दास दास श्री वल्लभकुल के चाकर राधावर के ॥
माता श्री राधिका पिता हरि बन्धु दास गुनकर के।
हरीचन्द तुमरे ही कहावत, नहिं बिधि के नहिं हर के" ॥

सब से पहिली सवैया यह है—

"यह सावन सोक नसावन है, मन भावन यामैं न लाजै भरो ।
जमुना पै चलौ सु सबै मिलि कै, अरु गाइ बजाइ कै सोक हरो ॥
इमि भाखत हैं हरिचन्द पिया, अहो लाडिली देर न यामैं करो ।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको, एहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरो ॥"

सब से पहिली ठुमरी यह बनाई—

"पछितात गुजरिया घर में खरी ॥
अब लग श्यामसुन्दर नहिं आए दुख दाइन भई रात अँधरिया ।
बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया । "

सब से पहिले अपने पिता का बनाया ग्रन्थ "भारतीभूषण" शिला-यन्त्र (लीथोग्राफ़) में छपवाया । सब से पहिला नाटक "विद्यासुन्दर" बनाया ।
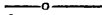
नवीन 'रसों' की कल्पना ।

इनकी बुद्धि का विकाश अत्यन्त अल्पवय में ही पूरा पूरा हो गया था । संस्कृत में कविता रचने की सामर्थ्य थी, समस्यापूर्ति बात की बात में करते थे । उस समय की इनकी समस्याएँ "कवि वचन सुधा" तथा मेगज़ीन में प्रकाशित हुई हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है । सब से बढ़कर आश्चर्य की घटना सुनिए । पण्डित ताराचरण तर्करत्न काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह बहादुर के सभापण्डित थे, कविताशक्ति इनकी परम आदरणीय थी, ऐसे कवि इस समय कम होते हैं । विद्वान् ऐसे थे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती सरीखे विद्वान् से इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है । उन पण्डित जी ने "शृङ्गार रत्नाकर" नामक संस्कृत में शृङ्गाररस विषयक एक काव्य-ग्रन्थ काशिराज की आज्ञा से सम्वत १९१९ (सन् १८६२) में बनाकर छपवाया है । उस समय बालक

हरिश्चन्द्र की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी, परन्तु इस बालकवि की प्रखर बुद्धि ने प्रौढ़ कवि तर्करत्न को मोहित कर लिया था, उन्हें भी इन की युक्ति युक्त उक्तियोँ को आदर के साथ मान्य करके अपने ग्रन्थ में लिखना पड़ा था । साहित्यकारों ने सदा से नव ही रसों का वर्णन किया है, परन्तु हरिश्चन्द्र की सम्मति में ४ रस और अधिक होने चाहिएँ । वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनन्द रस अधिक मानते थे । इनका कथन था कि इन चारों का भाव, शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत, इन, नवों रसों में से किसी में समाविष्ट नहीं होता, अतएव इन चारों को पृथक रस मानना चाहिये । इनके अकाट्य प्रमाणों से मुग्ध होकर तर्करत्न महाशय ने अपने उक्त ग्रन्थ में लिखा है "हरिश्चन्द्रास्तु वात्सल्य सख्य भक्त्यानन्दाख्यमधिकं रस चतुष्टयं मन्वते" आगे चलकर इन्होंने उदाहरण भी दिए हैं । योँ ही शृङ्गार रस में भी ये अनेक सूक्ष्म भेद मानते थे, जैसे ईर्षामान के दो भेद, विरह के तीन, शृङ्गार के पञ्चधा, नायिका के पाँच, और गर्विता के आठ; योँ ही कितने ही सूक्ष्म विचार हैं जिनको तर्करत्न महाशय ने सोदाहरण इनके नाम से अपने उक्त ग्रन्थ में मानकर उद्धृत किए हैं । इनके इन नए मतों पर उस समय पण्डित मँडली में बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई थी, इसका आन्दोलन कुछ दिनों तक, सुप्रसिद्ध "पण्डित" पत्र में, (जो "काशी-विद्या-सुधानिधि" के नाम से सँस्कृत कालेज से निकलता है) चला था । खेद का विषय है कि इस विषय का पूरा निराकरण वह किसी अपने ग्रन्थ में न कर सके । उनकी इच्छा थी कि अपने पिता के अधूरे ग्रन्थ "रस-रत्नाकर" को पूरा करें और उसी में इस विषय को लिखें । इसे उन्होँ ने आरम्भ भी किया था और नाम मात्र को थोड़ा सा "हरिश्चचन्द्र मैगज़ीन" के ७-८ अङ्क में प्रकाशित भी किया था कि जिसको देखने ही से वटुए के एक चावल की भाँति पूरे ग्रँथ का पता लगता है । परन्तु उनकी यह इच्छा मन की मन ही में रह गई और इसमें उन्हों ने अपने उस बड़े दोष को प्रत्यक्ष कर दिखाया जिसे स्वयं ही "चन्द्रावली नाटिका" के प्रस्तावना में पारिपार्श्वक के मुख से कहला-

या था कि "वह तो केवल आरम्भ शूर हैं" । बाबू साहेब ने इन रस्मों का कुछ संक्षिप्त वर्णन अपने "नाटक" नामक ग्रन्थ में किया है । अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु ऐसे गम्भीर विषय पर एक १२ वर्ष के बालक का मत प्रकाश करना और एक बड़े पण्डित को मना देना क्या आश्चर्य की बात नहीं है ?

———:o;———

काशी में होमियोपैथिक का प्रचार ।

होमियोपैथिक चिकित्सा का नाम तक काशी में कोई नहीं जानता था; पहिले पहिल इन्हों ने ही अपने घर में इसे आरम्भ किया और इसके चमत्कार गुणों से मोहित हो "होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय" (सन् १८६८) स्थापित कराया, जिसमें बराबर तन मन धन से ये सहायता देते रहे इस चिकित्सालय में १२०) वार्षिक चन्दा सन् १८६८ से ७३ तक देते रहे । बाबू लोकनाथ मैत्र बङ्गाल के प्रसिद्ध होमियोपैथिक चिकित्सक थे, वही पहिले डाक्टर काशी में आए और उनसे भारतेन्दु जी से बड़ा बन्धुत्व था । इनके पीछे डाक्टर ईश्वरचन्द्र रायचौधरी इनके चिकित्सक थे । अन्त में भी इन्हीं की दवा होती थी । इन्हें भारतेन्दु जी सदा नागरी अक्षर और बङ्ग-भाषा में पत्र लिखा करते थे ।

——:o:—— .

"कविता-वर्द्धिनी-सभा"

"कविता-वर्द्धिनी-सभा" वा कविसभा का जन्म सम्वत् १९२७ में हुआ था जिससे कितने ही गुणिओं का मान बढ़ाया जाता था और कितने ही कवियों को प्रशंसापत्र दिए जाते थे, कितने ही नवीन कवि प्रोत्साहित करके बनाए जाते थे । पण्डित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्य को "पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवी रहौ विक्टोरिया रानी" पूर्ति पर प्रशंसापत्र तथा सुकवि की पदवी दी गई थी, जिसका प्रभाव उक्त पण्डित जी पर कैसा कुछ हुआ

यह उनके चरित्रालोचन ही से प्रगट है। उस समय कविओं का अभाव नहीं था, सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान, दीनदयाल गिरि, दत्त (पण्डित दुर्गादत्त गौड़), द्विज मन्नालाल, आदि अच्छे अच्छे कवि जीवित थे; प्रायः सभी आते और विलक्षण समागम होता था। इससे जो प्रशंसापत्र दिया जाता था वह यह थाः—

प्रशंसापत्र ।

यह पशंसापत्र   को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो पूर्ण करने के हेतु दी गई थी) इन्हों ने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इन ने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मिती   की काव्य वर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षों ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्व्वक आदर से इन को यह पत्र दिया है।

मि०   संवत १९२७

ह०   ह०

सभापति   लेखाध्यक्ष

मुशायरा

यद्यपि ये हिन्दी के जन्मदाता और उर्दू के शत्रु कहे जाते हैं, परन्तु गुण ग्रहण करने में शत्रु मित्र का विचार नहीं करते थे। उर्दू कविओं के प्रोत्साहन के लिये सन् १२८४ हिज्री (सन् १८६६ ई०) में इन्हों ने "मुशाइरा" स्थापित किया था, जिसमें उस समय के शाइर इकट्ठे होते और समस्या पूर्ति करते। स्वयं बाबू साहब भी कविता (उर्दू) करते थे। अपना नाम उर्दू कविता में "रसा" (पहुँचा हुआ) रखते थे।

धर्म सभा तथा तदीय समाज।

———:o:———

काशिराज महाराज की ओर से काशी में "धर्म सभा" संस्थापित हुई थी । इसके द्वारा परीक्षाएँ होती थीं, अनेक धर्म कार्य होते थे, इस के ये सम्पादक और कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए थे ।

सम्वत् १९३०में इन्हों ने "तदीय समाज" स्थापित किया था। यद्यपि यह समाज प्रेम और धर्म सम्बन्धी था, परन्तु इस से कई एक बड़े बड़े काम हुए थे । इसी समाज के उद्योग से दिल्ली दर्बार के समय गवर्न्मेण्ट की सेवा में सारे भारतवर्ष की ओर से कई लाख हस्ताक्षर कराके गोवध बन्द करने के लिये अर्जी गई थी। गोरक्षा के लिये 'गोमहिमा' प्रभृति ग्रन्थ लिख कर बराबर ही आन्दोलन मचाते रहे । लोग स्थान स्थान में 'गोरक्षिणी सभाओं' तथा गोशालाओं के स्थापित होने के सूत्रधार मुक्तकंठ से इनको और स्वामी दयानन्द सरस्वती को मानते हैं इस समाज ने हज़ारों ही मनुष्यों से प्रतिज्ञा लेकर मद्य और मांस का व्यवहार बन्द कराया था । उस समय तक यहाँ कहीं Total Abstinenee Society का जन्म भी नहीं हुआ था। इस समाज की ओर से हज़ारों पुस्तकें दो प्रकार की चेक बही के भाँति छपवाकर बाँटी गई थीं, जिन में से एक पर दो साक्षियों के सामने शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा लिखाई जाती थी कि मैं इतने काल तक शराब न पीऊँगा और दूसरे पर मांस न खाने की प्रतिज्ञा थी कुछ दिन तक इसका बड़ा ज़ोर था। इस समाज ने बहुत से लोगों से प्रतिज्ञा कराई थी कि जहाँ तक सम्भव होगा वे देशी पदार्थों ही का व्यवहार करेंगे। स्वयं भी इस प्रतिज्ञा का पालन यथासाध्य करते रहे। इस समाज से "भवगद्भक्तितोषिणी" मासिक पत्रिका भी निकली थी जो थोड़े ही दिन चलकर बन्द हो गई । इस समाज के नियमादि विशेष रोचक हैं इस लिये प्रकाशित किए जाते हैं ।

इस समाज को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार सं० १९३० को आरम्भ किया था। इसके नियम ये थे—

१ श्री तदीय समाज इसका नाम होगा।

२ यह प्रति बुधवार को होगा ।
३ कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भी होगा ।
४ प्रत्येक वैष्णव इस समाज में आ सकते हैं परन्तु जिनका शुद्ध प्रेम होगा वे इसमें रहेंगे ।
५ कोई आस्तिक इस समाज में आ सकता है पर जब एक सभासद उसके विषय में भली भाँति कहेगा ।
६ जो कुछ द्रव्य समाज में एकत्रित होगा धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया जायगा ।
७ समाज क्या करेगा—
   (क) समाज का आरम्भ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा ।
   (ख) गुरूओं के नामों का सङ्कीर्तन होगा ।
   (ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा ।
   (घ) एक अध्याय श्री गीताजी का और श्रीमद्भागवत दशम का एक अध्याय, पढ़े जायँगे ।
   (ङ) समाज के समाप्ति में नाम सङ्कीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अंत में प्रसाद बँटैगा ।
८ इसकें और भी कर्म सामाजिकों की आज्ञा से बढ़ सकते हैं ।
९ यद्यपि इस समाज से जगत और मनुष्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करैगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त होगा ।

इसके ये महाशय सभासद थे, १ श्री हरिश्चन्द्र २ राजा भरतपुर (राव श्री कृष्णदेव शरण सिंह,—अच्छे कवि और विद्वान थे) ३ श्री गोकुलचन्द्र ४ दामोदर शास्त्री (सँस्कृत हिन्दी के प्रसिद्ध कवि) ५ तिलँवरा कर (?) ६ तारकाश्रम (अच्छे विरक्त थे) ७ प्रयागदत्त (सच्चरित्र ब्राह्मण थे) ८ शुकदेव मिश्र (श्री गोपाललाल जी के मन्दिर के कीर्तनिया) ९ हरीराम (प्रसिद्ध वीणकार बाजपेई जी) १० व्यास गणेशराम जी (श्री मद्भागवत के अच्छे वक्ता थे, बड़े उत्साही थे, भागवत सभा, कान्यकुब्ज पाठशाला के सँस्थापक थे) ११ कन्हैया-

लाल जी (बाबू गोपालचन्द्र जी के सभासद) १२ शाह कुन्दनलाल जी (श्री वृन्दावन के प्रसिद्ध कवि और महानुभाव) १३ मिश्र रामदास (?) १४ बाबा जी (?) १५ विट्ठल भट्टजी (बड़े विद्वान और भावुक वक्ता थे) १६ गोरजी (प्रसिद्ध तीर्थोद्धारक गोरजी दीक्षित) १७ रामचन्द्र पंत (?) १८ रघुनाथ जी (जम्बू राजगुरु बड़े विद्वान और गुणी थे) १६ शीतल जी (काशी गवर्न्मेण्ट कालिज के सुप्रसिद्ध अध्यापक, पण्डित मण्डली में मुख्य और संस्कृत हिन्दी के कवि) २० बेचनजी (गवर्न्मेण्ट कालिज के प्रधानाध्यापक, पण्डित मात्र इन्हें गुरुवत् मानते थे और अग्रपूजा इनकी होती थी, महान् विद्वान और कवि थे) २१ बीसूजी (काशी के प्रसिद्ध रईस, परम वैष्णव और सत्सङ्गी) २२ चिन्तामणि (कवि-वचन-सुधा के सम्पादक) २३ राघवाचार्य (बड़े गुणी थे) २४ ब्रह्मदत्त (परम विरक्त ब्राह्मण थे) २५ माणिक्यलाल (अब डिपटी कलक्टर हैं) २६ रामायण शरण जी (बड़े महानुभाव थे, समग्र तुलसी-कृत रामायण कंठ थी पचासों चेले लिए रामायण गाते फिरते थे, बड़े सुकंठ थे, काशिराज बड़ा आदर करते थे, काशी के प्रसिद्ध महात्माओं में थे) २७ गोपालदास २८ वृन्दावन जी २६ बिहारी लाल जी ३० शाह फुन्दन लाल जी (शाह कुन्दन लाल जी के भाई, बड़े महानुभाव थे) ३१ पण्डित राधाकृष्ण-लाहौर (पञ्जाब केशरी महाराज रञ्जीत सिंह के गुरु पण्डित मधुसूदन के पौत्र-लाहौर कालिज के चीफ़ पण्डित) ३२ ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह (बेसवाँ के राजा, बड़े विद्वान और वैष्णव थे) ३३ श्री शालिग्रामदास जी लाहौर (पञ्जाब में प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं सुकवि थे) ३४ श्री श्रीनिवासदास लाहौर ३५ परमेश्वरी दत्त जी (श्री मद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता थे) ३६ बाबू हरिकृष्णदास (श्री गिरिधर चरितामृत आदि ग्रन्थों के कर्ता) ३७ श्री मोहन जी नागर ३८ श्री बलवन्त राव जोशी ३६ ब्रजचन्द्र (सुकवि हैं) ४० छोटूलाल (हेड मास्टर हरिश्चन्द्र स्कूल) ४१ रामूजी—

इसमें बिना आज्ञा कोई नहीं आने पाता था। काशी के प्रसिद्ध जज पण्डित हीरानन्द चौबे जी के वंशधर पण्डित लोकनाथ जी ने जो स्वयं बड़े कवि थे नाथ नाम रखते थे टिकट मिलने के लिये यह दोहा लिखा था।

"श्री वृजराज समाज को तुम सुन्दर सिरताज ।
दीजै टिकट नेवाज करि नाथ हाथ हित काज ॥"

(२२ जनवरी १८७४)

स्वयं इस समाज में तदीय नामाङ्कित अनन्य वीर वैष्णव की पदवी ली थी । उसका प्रतिज्ञा पत्र यहाँ प्रकाशित होता है:—

"हम हरिश्चन्द्र अगरवाले श्री गोपालचन्द्र के पुत्र काशी चौखम्भा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामाङ्कित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं

१ हम केवल परम प्रेम मय भगवान श्री राधिका रमण का भी भजन करेंगे
२ बड़ी से बड़ी आपत्ति में भी अन्याश्रय न करेंगे
३ हम भगवान से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे
४ जुगल स्वरूप में हम भेद दृष्टि न देखेंगे
५ वैष्णव में हम जाति बुद्धि न करेंगे
६ वैष्णव के सब आचार्य्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रक्खेंगे परन्तु दूसरे आचार्य्य के मत विषय में कभी निन्दा वा खण्डन न करेंगे
७ किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भक्षण कभी न करेंगे
८ किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायँगे न पीयेंगे
९ श्री मद्भगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मनन शीलन करेंगे ।
१० महाप्रसाद में अन्न बुद्धि न करेंगे ।
११ हम आमरणान्त अपने प्रभु और आचार्य पर दृढ़ विश्वास रखकर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे ।
१२ वैष्णव-मार्ग के अविरुद्ध सब कर्म करेंगे और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त वा लौकिक कोई कर्म न करेंगे ।
१३ यथा शक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्वदा पालन करेंगे ।

१४ कभी कोई वाद जिससे रहस्य उद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहेंगे । और न कभी ऐसा वाद अवलम्बन करेंगे जिससे आस्तिकता की हानि हो ।

१५ चिन्ह की भाँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे ।

१६ यदि ऊपर लिखे नियमों को हम भंग करेंगे तो जो अपराध बन पड़ेगा हम समाज के सामने कहेंगे और उसकी क्षमा चाहेंगे और उसकी घृणा करेंगे ।

मिती भाद्रपद शुक्ल ११ संवत १९३०

हरिश्चन्द्र
हस्ताक्षर तदीय नामाङ्कित अनन्य वीर वैष्णव
यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि इसकी लाज तुम्हीं को है
(निज कल्पित अक्षर में)

मुहर | तदीय समाज |

साक्षी
पं० बेचन राम तिवारी
पं० ब्रह्मदत्त
चिन्तामणि
दामोदर शर्मा
शुकदेव
नारायण राव
माणिक्यलाल जोशी शर्मा

———:o:———

लोक-हितकर सभा आदि ।

इस समाज के अतिरिक्त "हिन्दी डिबेटिङ्ग क्लब", "यङ्ग मेन्स एसोसिएशन", "काशी सार्वजनिक सभा", "वैश्य हितैषिणी सभा", अदालतों में हिन्दी जारी कराने के लिये सभाएँ आदि कितनी ही सभा सोसाइटिएँ इन्होंने स्थापित की थीं कि जिन का अब पूरा पूरा पता तक नहीं लगता ।

इन अपनी सभा सोसाइटिओं के अतिरिक्त जितने ही देशहितकर तथा लोकहितकर कार्य होते थे सभों में ये मुख्य सहायक रहते थे । "बनारस इन्स्टिट्यूट" के ये संस्थापकों में से थे । इस

'इन्स्टिट्यूट' में इनसे और राजा शिवप्रसाद से प्रायः चोट चलती थी । "कारमाइकल लाइब्रेरी" तथा "बाल-सरस्वती-भवन" के सँस्थापन में प्रधान सहायक थे; हज़ारों ही ग्रन्थ दिए थे । "काशीपत्रिका", "भारतमित्र", "मित्रविलास", "आर्यमित्र" आदि यावत् प्राचीन हिन्दी पत्रों को प्रोत्साहन तथा लेखादि सहायता द्वारा जन्म देने के ये प्रधान कारण थे । खानदेश के अकाल में सहायता देने के लिये ये बाज़ार में खप्पर लेकर भीख माँगते फिरे थे, हज़ारों ही रुपए उगाह कर भेजे थे । काशी के कम्पनी बाग़ में लोगों के बैठने को लोहे की बेञ्चें अपने व्यय से रखवाई थीं । मणिकर्णिका कुंड में हज़ारों यात्री गिरा करते थे, उस में लोहे का कटघरा अपने व्यय से लगवा दिया । माधोराय के प्रसिद्ध धरहरे पर छड़ नहीं लगे थे, जिस से कभी कभी मनुष्य गिरकर चूर हो गए हैं, उस पर छड़ अपने व्यय से लगवाया इन कामों के लिये म्यूनिसिपैलिटी ने धन्यवाद दिया था । म्यो मेमोरिअल में १५००) रु० दिया था । फ्रांस और जर्मन की लड़ाई का इतिहास तथा सर विलियम म्योर की जीवनी, गोरक्षा पर उपन्यास आदि कितने ही ग्रन्थ रचना के लिये पारितोषिक नियत किया था । प्रातःस्मरणीया मिस मेरी कारपेन्टर के स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी उद्योग में प्रधान सहायक थे । विवाह आदि में अपव्ययिता कम करने के आन्दोलन के सहकारी थे । मिस्टर शेरिङ्ग, डाक्तर हार्नली, डाक्तर राजेन्द्र लाल मित्र, पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति कितने ही ग्रन्थकारों के कितने ही ग्रन्थ रचना में ये सहायक रहे हैं, जिन्हें उन्हों ने निज ग्रन्थों में धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया है । थिआसोफ़िकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नेल आलकाट और मैडेम ब्लेवेट्स्की का काशी में जब जब आना हुआ तब तब ये उनके सहायक रहे । अपने स्कूल के छात्र दामोदरदास के बी० ए० पास करने पर सोने की घड़ी और काशी संस्कृत कालेज से आचार्य परीक्षा में पहिले पहिल जितने लड़के पास हुए थे सभों को घड़ियाँ पारितोषिक दी थीं । भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में जितनी लड़कियाँ अंग्रेज़ी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुई थीं सभों को शिक्षाविभाग द्वारा साड़ियाँ पारितोषिक दी थीं । इनमें से कलकत्ता बेथुन कालेज की लड़कियों

को जो साड़ियें भेजी गई थीं उन्हें श्रीमती लेडी रिपन ने अपने हाथ से बाँटा था। बङ्गाल के डाइरेक्टर सर आलफ्रेड क्राफ्ट साहब ने लिखा था कि जिस समय श्रीमती ने हर्ष पूर्वक यह आप का उपहार कन्याओं को दिया था, उस समय आनन्द ध्वनि से सभास्थल गूँज उठा था। ब्राह्म विवाह पर जिस समय क़ानून बन रहा था उस समय इन्होंने जो सहायता दी थी उस के लिये उक्त समाज के नेता स्वर्गीय केशवचन्द्र, सेन ने अपने पत्र द्वारा हृदय से इन्हें धन्यवाद दिया था। सन् १८८३ ई० में भारतबन्धु लार्ड रिपन के समय में जो इलबर्ट बिल का आन्दोलन उठा था उसे इन्होंने अपने "काल चक्र" में "आर्यों में ऐक्य का संस्थापन (इलबर्ट बिल) सन् १८८३" लिखा था। वास्तव में उसी समय से हिन्दुस्तानियों में कुछ ऐक्य का बीजारोपन हुआ। उस समय सुप्रसिद्ध बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एक "नेशनल फण्ड" स्थापित किया था, उस के लिये वह काशी भी आए थे; ये उस के प्रधान सहायक हुए और बाबू सुरेन्द्रनाथ को एक "ईवनिङ्गपार्टी" भी दी थी। इस के पीछे ही "नेशनल काङ्ग्रेस" का जन्म हुआ, अतः यह आन्दोलन भी उसी में विलीन हो गया। जिस समय सर विलियम म्योर के स्वागत में काशी में गङ्गातट पर रौशनी हुई थी उस समय इन्होंने एक नाव पर Oh Tax और दूसरी पर—

"स्वागत स्वागत धन्य प्रभु श्री सर विलियम म्योर।
टिकस छोड़ावहु सबन को, बिनय करत कर जोर"॥

यह रोशनी में लिखवाया था। निदान जितने ही देश-हितकर तथा लोकहितकर कार्य होते सभी में ये जी जान से सहायक होते थे।

श्री मुकुन्दराय जी के छप्पन भोग के उत्सव के निमित्त ११००) रु० की सेवा की थी। स्ट्रेन्जर्स होम, सोलजर्स सोसाइटी, जौनपुर के बाढ़ की सहायता, आदि जो अवसर आते उनमें ये मुक्तहस्त हो सहायता करते थे।

प्रसिद्ध बङ्ग कवि हेमचन्द्र बानर्जी, राजकृष्ण राय, द्वारिका नाथ विद्याभूषण, बङ्किमचन्द्र चटर्जी, पञ्जाब यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार तथा हिन्दी के सुलेखक नवीमचन्द्र राय, हिन्दू पेट्रिय-

टसम्पादक कृष्णदास पाल, रईस रैयत सम्पादक डाक्टर शम्भूचन्द्र मुकर्जी, पूना सार्वजनिक सभा के संस्थापक गणेश वासुदेव जोशी, बम्बई के प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर भाऊ दाजी और पंजाब के प्रसिद्ध रईस और विद्यारसिक सर अतर सिँह भदौड़िया आदि से इनसे विशेष स्नेह था और इनके कामों में बराबर सहायक होते थे ।

———:o:———

गुणियोँ का आदर ।

यह हम ऊपर कह आए हैं कि गुणियोँ का आदर और गुणग्राहकता इनका स्वभाव था । काशी में कोई गुणी आकर इनसे आदर पाए बिना नहीँ जाता था । कवियोँ के तो ये कल्पतरु थे । कवि परमानन्द को बिहारी सतसई के संस्कृत अनुवाद करने पर ५००) पारितोपिक दिया था । महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी जी को निम्नलिखित दोहे पर १००) और अंग्रेज़ी रीति पर अपनी जन्मपत्री बनवाकर ५००) दिया था :—

"राजघाट पर बँधत पुल जहँ कुलीन की ढेर ।
आज गए कल देख के आजहि लौटे फेर ॥"

इस प्रकार से कितनोँ का क्या क्या सत्कार किया इसका ठिकाना नहीँ । परन्तु कुछ गुणियोँ के गुण का यहाँ पर वर्णन करना परमावश्यक है, क्योँकि ऐसे अद्भुत गुणोँ का भारतवासियोँ में होना परम गौरव की बात है । अब वे गुणी नहीँ हैं, परन्तु उनकी कीर्ति इतिहास में रहनी चाहिए । सुप्रसिद्ध विद्वान् भारतमार्तण्ड श्री गट्टू लाला जी की विद्वत्ता, आशु कविता और शतावधान आदि आश्चर्य शक्तियें जगत-प्रसिद्ध हैं, उसका वर्णन निष्प्रयोजन है । इन गट्टू लाला जी के सम्मान में इन्होँने काशी में महती सभा की थी, जिसमें यूरोपीय विद्वान् भी आकर अचम्भित हुए थे । एक दक्षिणी विद्वान् आए थे, इनका नाम नारायण मार्तण्ड था; इनकी गणित में विलक्षण शक्ति थी; गणित के ऐसे बड़े बड़े हिसाब जिनको अच्छे अच्छे विद्वान् पाँच चार दिन के परिश्रम में भी

नहीं कर सकते, उन्हें यह पाँच मिनिट के भीतर करते थे और विशेषता यह थी कि उसी समय कोई उनके साथ ताश खेलता, कोई शतरञ्ज, कोई चौसर, कोई उनको बकवाता और तरह तरह के प्रश्न करता जाता परन्तु इन सब कामों के साथही वह मन ही मन हिसाब भी कर डालते और वह हिसाब अभ्रान्त होता। इनका बाबू साहब के कारण काशी में बड़ा आदर हुआ । काशिराज ने भी इन्हें आदर दिया था। एक मद्रासी ब्राह्मण वेङ्कट सुब्बैयाचार्य आए थे, इनका गुण दिखाने के लिये अपने बाग़ रामकटोरा में सभा की थी । उसमें बनारस कालिज के प्रिन्सिपल ग्रिफ़िथ साहब तथा अन्य यूरोपीय और देशीय सज्जन एकत्रित थे। धनुर्विद्या के आश्चर्य गुण इन्हों ने दिखाए । अपनी आँखों में पट्टी बाँधकर उस तीक्ष्ण तीर से जिससे लोहे की मोटी चादरों में छेद हो जाय, एक व्यक्ति की आँख पर तिनका बाँध कर उसमें मोम से दुअन्नी चपकाकर केवल शब्द पर बाण मारा, दुअन्नी उड़ गई और तिनका ज्यों का त्यों रहा; जैसे अर्जुन ने महाभारत में जयद्रथ का सिर तीरों के द्वारा उड़ाकर उसके पिता के हाथ में गिराया था, वैसेही इन्हों ने एक नारङ्गी को तीरों के द्वारा उड़ाया और लगभग तीस चालीस कोस की दूरी पर खड़े एक मनुष्य के हाथ में गिरा दिया; अँगूठी को कूए में फेंककर बीच ही से तीरों के द्वारा रहट की भाँति उसे बाहर ला गिराया; निदान ऐसे ही आश्चर्य तमाशे किए थे । यूरोपियनों ने मुक्तकंठ हो कहा था कि महाभारत में लिखी बातें इस को देखकर सच्ची जान पड़ती हैं। एक पहलवान तुलसीदास बाबा आए थे, इनका कौतुक नार्मल स्कूल में कराया था । हाथी बाँधने का सूत का रस्सा पैर के अंगूठे में बाँधकर तोड़ डालते, मोटे से मोटे लोहे के खम्भों को मोम की बत्ती की तरह दोहरा कर देते, दो कुर्सियों पर लेटकर छाती को अधड़ में रखकर उस पर छ इञ्च मोटा पत्थर तोड़वा डालते, नारियल को जटा सहित सिर पर मार कर तोड़ डालते निदान मानुषी पौरुष की पराकाष्ठा थी। पण्डितवर बापूदेव शास्त्री जी को नवीन पञ्चाङ्ग की रचना पर दुशाले आदि से पुरस्कृत किया था।

प्रसिद्ध वीणकार हरीराम वाजपेई कितने ही दिनों तक इनसे ५०) रु० मासिक पाते रहे । निदान अपने वित्त से बाहर गुणियों का आदर करते । इनके अत्यन्त कष्ट के समय में भी कोई गुणी इनके द्वार से विमुख न जाता ।

पुरातत्त्व ।

पुरातत्त्व के अनुसन्धान की ओर इनकी पूरी रुचि थी । इनके द्वारा डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। इनके अविष्कृत कितने ही लेख "एशियाटिक सोसाइटी के 'जर्नल' तथा प्रोसीडिङ्ग' में छपे हैं । इनके पुस्तकालय की प्राचीन पुस्तकों से उक्त सोसाइटी को बहुत कुछ सहायता मिलती थी । गवर्न्मेण्ट द्वारा प्रकाशित संस्कृत ग्रन्थों की सूची तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी ग्रन्थ इन उपकारों के बदले गवर्न्मेण्ट इन्हें उपहार देती थी। इन्होंने एक अत्यन्त प्राचीन भागवत को 'एशियाटिक सोसाइटी' में उपस्थित करके इस बात का निर्णय करा दिया कि श्रीमद्भागवत वोपदेव कृत नहीं है । प्राचीन सिक्कों और अशर्फियों का संग्रह भी अमूल्य किया था, परन्तु खेद का विषय है कि किसी लोभी ने उसे चुराकर उनको अत्यन्त ही व्यथित कर दिया । अब भी पैसे रुपए तथा स्टाम्प का अच्छा संग्रह है । पुरातत्त्व विषयक अनेक लेख भी लिखे हैं ।

———:o:———

परिहास प्रियता ।

परिहास-प्रियता भी इनकी अपूर्व थी । अँगरेज़ी में पहिली अप्रैल का दिन मानो होली का दिन है । उस दिन लोगों को धोखा देकर मूर्ख बनाना बुद्धिमानी का काम समझा जाता है । इन्होंने भी कई बेर काशीवासियों को योंही छकाया था । एक बेर छाप दिया कि एक यूरोपीय विद्वान् आए हैं जो महाराजा विज़िया-

नग्रम की कोठी में सूर्य चन्द्रमा आदि को प्रत्यक्ष पृथ्वी पर बुलाकर दिखलावेंगे। लोग धोखे में गए और लज्जित होकर हँसते हुए लौट आए। एक बेर प्रकाशित किया कि एक बड़े गवैये आए हैं, वह लोगों को 'हरिश्चन्द्र स्कूल' में गाना सुनावेंगे। जब हज़ारों मनुष्य इकट्ठे हो गए तब पर्दा खुला, एक मनुष्य विचित्र रङ्गों से मुख रँगे, गदहा टोपी पहिने, उलटा तानपूरा लिए, गदहे की भाँति रेंक उठा। एक बेर छाप दिया था कि एक मेम रामनगर से खड़ाऊँ पर चढ़कर गङ्गा पार उतरेंगी। इस बेर तो एक भारी मेला हो लग गया था। परन्तु सन्ध्या को कोलाहल मचा कि "एप्रिल फूल्स"। लड़कपन में भी अपने घर के पीछे अँधेरी गली में फास्फरस से विचित्र मूर्ति और विचित्र आकार लिखकर लोगों को डरवाते थे। मित्रों के साथ नित्य के हास परिहास उनके परम मनोहर होते थे। श्री जगन्नाथ जी को जो फूल की टोपी पहिनाई जाती है वह इतनी बड़ी होती है कि मनुष्य उसमें छिप जाय, इन्होंने यह कौतुक किया कि आप तो टोपी में छिप गए और छोटे भाई बाबू गोकुलचन्द्र ने लोगों से कहा कि श्री जगदीश का प्रत्यक्ष प्रभाव देखो कि टोपी आप से आप चलती है, बस टोपी चलने लगी लोग देखकर अचम्भे में आ गए। अन्त में आपने टोपी उलट दी तब लोगों को भेद खुला।

---:o:---

उदारता-धन के बिना कष्ट ।

इनकी उदारता जगत्-प्रसिद्ध है। हम केवल दो चार बातें उदाहरण स्वरूप यहाँ लिखते हैं। हिस्सा होने के थोड़े ही दिन पीछे महाराज बितिया के यहाँ से इनके हिस्से का छत्तीस हज़ार रुपया वसूल होकर आया। इन्होंने उसको अपने दर्बारी एक मुसाहिब के यहाँ रख दिया। कुछ थोड़ा बहुत द्रव्य उसमें से आया था कि उन्होंने रोते हुए आकर कहा "हुज़ूर! मेरे यहाँ चोरी हो गई। आपके रुपये के साथ मेरा भी सर्वस्व जाता रहा"। उनके रोने चिल्लाने से घबराकर इन्होंने कहा "तो रोते क्या हो? गया

सो गया, यही ग़नीमत समझो कि चोर तुम्हें उठा न ले गए"। चलिए मामला ते हुआ। लाख लोगों ने चाहा कि इन्हें तङ्ग करके रुपया वसूल किया जाय, परन्तु भारतेन्दु जी ने कुछ न किया और कहा "चलो, बिचारा ग़रीब इसीसे कमा खायगा"। कुछ करने की कौन कहे, उन्हें अपनी मुसाहिबी से भी नहीं निकाला। उक्त व्यक्ति एक दिन इतना बढ़ा कि लखपती हो गया। कुछ दिनों पीछे जब द्रव्याभाव हो गया था और प्रायः कष्ट उठाया करते थे उस अवस्था में एक दिन बहुत से पत्र और पैकेट लिखकर रक्खे थे कि उनके एक मित्र के छोटे भाई (लाला जगदेवप्रसाद गौड़) उनसे मिलने आए। उन्होंने पूछा "बाबू साहब! ये सब पत्र डाक में क्यों नहीं गए?" उत्तर मिला "टिकट बिना" उक्त महाशय ने २) रु० का टिकट मँगाकर उन सभों को डाक में छुड़वाया। उस २) को भारतेन्दु महोदय ने उन्हें कम से कम दस बेर दिया। उक्त महाशय का कथन है कि "जब मैं मिलने गया २) रु० टिकट वाला मुझे दिया; मैं ने लाख कहा कि मैं कई बेर यह रुपया पा चुका हूँ, पर उन्हों ने एक न माना, कहा तुम भूल गए होगे; मैं ने विशेष आग्रह किया तो बोले अच्छा, क्या हुआ; लड़के तो हो, मिठाई ही खाना"। एक आलबम चित्रों का इन्हों ने अत्यंत ही परिश्रम के साथ संग्रह किया था, जिसमें बादशाहों, विद्वानों, आचार्यों आदि के चित्र बड़े व्यय और परिश्रम से संग्रह किए थे। एक शाहज़ादे महाशय उस आलबम की एक दिन बड़ी ही प्रशंसा करने लगे। आपने कहा कि "जो यह इतना पसन्द है तो नज़र है"। बस फिर क्या था, उक्त महोदय ने उठकर लम्बी सलाम की और लेकर चलते बने। उदार-हृदय हरिश्चन्द्र को कभी किसी पदार्थ को देकर दुःख होते किसीने नहीं देखा, परन्तु इस आलबम का उन्हें दुःख हुआ। पीछे वह इसका मूल्य ५००) रु० तक देकर लेना चाहते थे, परन्तु न मिला। एक दिन आप कहीं से एक गजरा फूलों का पहिने आ रहे थे। एक चौराहे पर उसे लपेटकर रख दिया। जो नौकर साथ में था उसे कुछ सन्देह हुआ। वह इन्हें पहुँचाकर फिर उसी चौराहे पर लौट आया, तो उस गजरे को ज्यों का त्यों पाया। उठाकर देखा तो

उसमें पाँच रुपए लपेट कर रक्खे हुए थे । एक दिन जाड़े की ऋतु में रात को आप आ रहे थे, एक दीन दुखी सड़क के किनारे पड़ा ठिठुर रहा था, दयार्द्रचित्त हरिश्चन्द्र से यह उसका दुख न देखा गया; बहुमूल्य दुशाला जो आप ओढ़े हुए थे उस पर डाल चुप चाप चले आए। ऐसा कई बार हुआ है। एक दिन मोतियों का कंठा पहिनकर गोस्वामी श्री जीवनजी महाराज (मुम्बई वाले) के दर्शन को गए। महाराज ने कहा "बाबू! कंठा तो बहुत ही सुन्दर है"। आपने चट उसे भेट कर दिया। कितने व्यक्तियों को हजारों रुपए के फोटोग्राफ़ उतारने के सामान, तथा जादू के तमाशे के सामान लेकर दे दिए कि जिनसे वे आज तक कमाते खाते हैं। सिवाय कितने ही उदाहरण ऐसे हैं जिनका पता लगाना या वर्णन करना असम्भव है । लिफ़ाफ़े में नोट रखकर या पुड़िया में रुपया बाधकर चुपचाप देना तो नित्य की बात थी। कोई व्यक्ति दो चार दिन भी इनके पास आया और इन्हें उसका ख़याल हुआ; आप कष्ट पाते परन्तु उसे अवश्य कुछ न कुछ देते। यह अवस्था इनकी मरने के समय तक थी। सन् १८७० में इन्होंने अपना हिस्सा अलग करा लिया था, परन्तु चारहीं पाँच वर्ष में जो कुछ पाया सब खो बैठे। लगभग १४, १५ वर्ष वह इस पृथ्वी पर इस प्रकार से रहे कि न तो इनके पास कोई जायदाद थी और न कुछ द्रव्य। कभी कभी यह अवस्था तक हो गई है कि चबैना खा-कर दिन काट दिया, परन्तु उदार-प्रकृति और हरिश्चन्द्र की दात-व्यता कभी बन्द नहीं हुई। आज पैसे पैसे के लिये कष्ट उठा रहे हैं, और कल कहीं से कुछ द्रव्य आजाय तो फिर उसकी रक्षा नहीं; वह भी वैसेही पानी की भाँति बहाया जाता, दो ही तीन दिन में साफ़ हो जाता। बहुत कुछ धनहीनता से कष्ट पाने पर भी इन्हें धन न रहने का कुछ दुःख न होता, सिवाय उस अवस्था के जब कि हाथ में धन न रहने से किसी दयापात्र वा किसी सज्जन का क्लेश दूर न कर सकने, अथवा कोई धनिक इनके आगे अभिमान करता। ऋण इनके जीवन का साथी था । ऋण करना और व्यय करना। परन्तु आश्चर्य यह है कि न तो मरने के समय अपने पास कुछ छोड़ मरे और न कुछ भी उचित ऋण देने बिना बाकी रह

गया ! इनकी इस दशा पर महाराज काशिराज ने जो दोहा लिखा था हम उसे उद्धृत कर देते हैं—

"यद्यपि आपु दरिद्र सम, जानि परत त्रिपुरार ।
दीन दुखी के हेतु सोइ, दानी परम उदार ॥"

——:o:——

लेखन शक्ति ।

लेखनशक्ति इनकी आश्चर्य थी, क़लम कभी न रुकता । बातें होती जाती हैं क़लम चला जाता है । डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र ने इनकी यह लीला देखकर इनका नाम Writing Machine (लिखने की कल) रक्खा था । उर्दू अँगरेज़ी वालों से कई बेर बाज़ी लगा कर हिन्दी लिखने में जीता था । सब से बढ़कर आश्चर्य यह था कि इतना शीघ्र लिखने पर भी अक्षर इनके बड़े सुन्दर और साँचे में ढले से होते थे । नागरी और अँगरेज़ी के अक्षर बहुत सुन्दर बनते थे । इनके अतिरिक्त महाजनी, फ़ारसी, गुजराती, बँगला और अपने बनाए नवीन अक्षर लिख सकते थे । क़लम दावात और काग़ज़ों का बस्ता सदा उनके साथ चलता था । दिन भर लिखने पर भी संतोष न था. रात को उठ उठकर लिखा करते । कई बार ऐसा हुआ कि रात को नीँद खुली और कुछ कविता लिखनी हुई, क़लम दावात नहीं मिली तो कोयले या ठीकरे से दीवार पर लिख दिया; सवेरे हमलोग उसकी नक़ल कर लाए । कितनी ही कविता स्वप्न में बनाते थे, जिनमे से कभी कभी कुछ याद आने से लिख भी लेते थे । 'प्रेमतरङ्ग' में एक लावनी ऐसी छपी है । इस लावनी को विचारपूर्वक देखिए तो सपने की कविता और जागने पर पूर्ति जो की है वह स्पष्ट विदित होती है । काग़ज़ क़लम दावात का कुछ विशेष विचार न था, समय पर जैसी ही सामग्री मिल जाय वही सही । टूटे क़लम से तथा कुछ न प्राप्त होने पर तिनके तक से लिखा करते थे, परन्तु अक्षर की सुघरता नहीं बिगड़ती थी ।

आशु कविता ।

———:o:———

कवितारशक्ति इनकी विलक्षण थी । कई बेर घड़ी लेकर परीक्षा की गई कि चार मिनिट के भीतर ही समस्या पूर्ति कर लेते थे। बड़े बड़े सभाओं और बड़े बड़े दर्बारों में इस प्रकार समस्यापूर्ति करना सहज न था । इतने पर आधिक्य यह कि किसी से दबते न थे, जो जी में आता था उसे प्रकाश कर देते थे । उदयपुर महाराणा जी के दर्बार में बैठकर निम्न लिखित समस्यापूर्ति का करना कुछ सहज काम न था—

राधाश्याम सेवैं सदा वृन्दावन बास करैं,
रहैं निहचिन्त पद आस गुरुवर के ।
चाहैं धनधाम ना आराम सों है काम हरिचन्दजू,
भरोसे रहैं नन्दराय घर के ॥
ऐरे नीच धनी ! हमें तेज तू दिखावे कहा,
गज परवाही नाहिं होयँ कवौं खरके ।
होइ लै रसाल तू भलेई जगजीव काज,
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के ॥ १ ॥

काशिराज के दर्बार में एक समस्या किसीने दी थी; किसी से पूर्ति न हुई; ये आगए । महाराज ने कहा "बाबू साहब, इस समस्या की पूर्ति आप कीजिए, किसी कवि से न हो सकी"। इन्होंने तुरन्त लिखकर सुना दी, मानो पहिले ही से याद थी । कवियों को बुरा लगा । एक बोल उठे "पुराना कवित्त बाबू साहब को याद रहा होगा"। बस इन्हें क्रोध आगया, दस बारह कवित्त तुरन्त बनाते गए और कविजी से पूछते गए "क्यों कविजी ! यहभी पुराना है न ?" अन्त में काशिराज के बहुत रोकने पर रुके । इनके इन्हीं गुणों से काशिराज इनपर मोहित थे । इनसे अत्यन्त स्नेह करते थे। काशिराज को सोमवार का दिन घातवार था, उस दिन वह किसी से नहीं मिलते थे । एक बेर इन्होंने भी लिख भेजा कि "आज सोम

वार का दिन है इसलिये मैं नहीं आया" । काशिराज ने उत्तर में यह दोहा लिखा—

"हरिश्चन्द्र को चन्द्र दिन तहाँ कहा अटकाव।
आवन को नहिं मन रह्यौ इहौ बहाना भाव॥"

इस के अक्षर अक्षर से स्नेह टपकता है। सुप्रसिद्ध गट्टू लाल जी इन की समस्यापूर्ति पर परम प्रसन्न हुए थे। वृन्दावनस्थ श्री शाह कुन्दनलाल जी की समस्या पर इन की पूर्ति और इन की समस्या पर उन की पूर्ति देखने योग्य हैं। काशिराज के पौत्र के यज्ञोपवीत के उपलक्ष में "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं" पर कई श्लोक बड़े धूमधाम के कोलाहल के समय बात की बात में बनाए थे। केवल समस्या पूर्ति ही तत्काल नहीं करते थे, ग्रन्थ रचना में भी यही दशा थी। 'अन्धेर नगरी' एक दिन में लिखी गई थी। 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' टाउनहाल की सभा के दिन लिखी गई थी। बलिया का लेकचर और हिन्दी का लेकचर (पद्यमय) एक दिन में लिखा गया। ऐसे ही उनके प्रायः काम समय पर ही हुआ करते थे, परन्तु आश्चर्य यह है कि उतनी शीघ्रता में भी त्रुटि कदाचित ही होती रही हो। देशहित नसों में भरा हुआ था। कदाचित् ही कोई ग्रन्थ इनके ऐसे होंगे जिसमें किसी न किसी प्रकार से इन्होंने देशदशा पर अपना फफोला न निकाला हो। कहाँ धर्मसम्बन्धी कविता "प्रबोधिनी" और कहाँ "बरसत सब ही विधि बेबसी अब तौ जागो चक्रधर" अपने बनाए ग्रन्थों में निम्न लिखित ग्रन्थ इन्हें विशेष रुचते थे।

काव्यों में—प्रेमफुलवारी
नाटकों में—सत्यहरिश्चन्द्र, चन्द्रावली
धर्म सम्बन्धी में— तदीयसर्वस्व
ऐतिहासिक में—काश्मीर कुसुम (इसमें बड़ा परिश्रम किया था)
देशदशा में—भारतदुर्दशा।

एक दिन एक कवित्त बनाया। जिस के भावों के विषय में उन का विचार यह था कि ये नए भाव हैं; परन्तु मैंने इन्हीं भावों का एक कवित्त एक प्राचीन संग्रह में देखा था, उसे दिखाया; इन्होंने तुरन्त उस अपने कवित्त को (यद्यपि उसमें प्राचीन क-

चित्त से कई भाव अधिक थे) फाड़ डाला और कहा " कभी कभी दो हृदय एक होजाते हैं । मैं ने इस कवित्त को कभी नहीं देखा था, परन्तु इस कवि के हृदय से इस समय मेरा हृदय मिल गया, अतः अब इस कवित्त के रहने की कोई आवश्यकता नहीं" । वह प्राचीन कवित्त यह था ।—

"जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी,
जैसी गति तैसी मति हिय तें विसारिए ।
जैसी तेरी भौंह तैसे पन्थ पैं न दीजे पाँव,
जैसे नैन तैसिए बड़ाई उर धारिए ॥
जैसे तेरे ओंठ तैसे नैन कीजिए-न, जैसे,
कुच तैसे बैन मुख तें न उचारिए ।
एरी पिकबैनी ! सुनु प्यारे मन मोहन सों,
जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति विसतारिए ॥ १ ॥"

उनका कथन था कि "जैसा जोश और जैसा ज़ोर मेरे लेख में पहिले था वैसा अब नहीं है; यद्यपि भाषा विशेष प्रौढ़ और परिमार्जित होती जाती है, तथापि वह बात अब नहीं है" । वास्तव में सन् ७३।७४ के लगभग के इन के लेख बड़े ही उमङ्ग से भरे और जोश वाले होते थे । यह समय वह था जब कि ये प्रायः रामकटोरा के बाग़ में रहते थे । अस्तु, इन की इस अलौकिक शक्ति तथा इन के ग्रन्थों की रचना पर आलोचना की जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जाय ।

——:o:——

ग्रन्थ रचना ।

यह हम पहिले कह आए हैं कि जिस समय इन्हों ने हिन्दी की ओर ध्यान दिया, उस समय तक हिन्दी गद्य में कुछ न था । अच्छे ग्रन्थों में केवल राजा लक्ष्मणसिंह का शकुन्तलानुवाद छपा था और राजा शिवप्रसाद के कुछ ग्रन्थ छपे थे । इन्हों ने

पहिले पहिल शृङ्गार रस की कविता करनी आरम्भ की और कुछ धर्म सम्बन्धीय ग्रन्थ लिखे । उस समय कुछ निज रचित और कुछ दूसरों के लिखे ग्रन्थ तथा कुछ संग्रह इन्होंने छपवाए। 'कार्तिक कर्म विधि', 'मार्गशीर्ष महिमा', 'तहक़ीक़ात पुरी की तहक़ीक़ात', 'पञ्चकोशी के मार्ग का विचार', 'सुजान शतक', 'भागवत शङ्का निरासवाद' आदि ग्रन्थ सन् १८७२ के पहिले छपे। इसी समय 'फूलों का गुच्छा' लावनियों का ग्रन्थ बनाया। उस समय बनारस में बनारसी लावनीबाज़ की लावनियों का बड़ा चर्चा था। उसी समय 'सुन्दरी तिलक' नामक सवैयों का एक छोटा सा संग्रह छपा। तब तक ऐसे ग्रन्थों का प्रचार बहुत कम था । इस ग्रन्थ का बड़ा प्रचार हुआ, इसके कितने ही संस्करण हुए, विना इनकी आज्ञा के लोगों ने छापना और बेचना आरम्भ किया, यहाँ तक कि इनका नाम तक टाइटिल पर छोड़ दिया। परन्तु इसका उन्हें कुछ ध्यान न था। अब एक संस्करण खड्गविलास प्रेस में हुआ है जिसमें चौदह सौ के लगभग सवैया हैं; परन्तु इन सवैयों का चुनाव भारतेन्दु जी के रुचि के अनुसार हुआ या नहीं यह उनकी आत्मा ही जानती होगी । 'प्रेमतरङ्ग' और 'गुलज़ार पुर बहार' के भी कई संस्करण हुए, जो एक से दूसरे नहीं मिलते, जिनमें से खड्गविलास प्रेस का संस्करण सब से बढ़ गया है । इस प्रकार कुछ काल तक चलने पर ये यथार्थ में गद्य साहित्य की ओर झुके। 'मैगज़ीन' के प्रकाश के अतिरिक्त पहिले नाटकों ही के ओर रुचि हुई। सन् १८६८ ई० में रत्नावली नाटिका का अनुवाद आरम्भ किया था, पर वह अधूरा रह गया। इससे भी पहिले 'प्रवास नाटक' लिखते थे, वह भी अधूरा ही रह गया। सब से पहिला नाटक 'विद्या सुन्दर', फिर 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', फिर 'धनञ्जय विजय' और फिर 'कर्पूर मञ्जरी' 'कर्पूर मञ्जरी की भाषा सरल भाषा की टकसाल कहने योग्य है। इसी समय 'प्रेमफुलवारी' भी बनी। इस समय वास्तव में ये 'प्रेम फुलवारी' के पथिक थे, अतः इसकी कविता भी कुछ और ही हुई है। इसके पीछे 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'चन्द्रावली नाटिका' बनी और पूरे नाटकों में से सबसे अन्तिम 'नीलदेवी' तथा 'अन्धेर

नगरी' हैं और अधूरे में 'सती प्रताप' तथा 'नव मल्लिका'। 'नव मल्लिका' को महा नाटक बनाना चाहते थे और उसके पात्रों तथा अङ्कों की सूची बना ली थी, परन्तु मूल नाटक थोड़ा ही सा बना था कि रह गया। हिन्दी नाटकों के अभिनय कराने का भी इन्हों ने बहुत कुछ यत्न किया; स्वयं भी सब सामान किया था, और भी कई कम्पनियों को उत्साहित कर अभिनय कराया था। इनके बनाए 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'वैदिकी हिंसा', 'अन्धेरनगरी' और 'नीलदेवी' का कई बेर कई स्थानों पर अभिनय हुआ है। उपन्यासों की ओर पहिले इनका ध्यान कम था। इनके अनुरोध और उत्साह से पहिले पहिल 'कादम्बरी' और 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद हुआ स्वयं एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था जिसका कुछ अंश 'कविवचनसुधा' में छपा भी था। नाम उसका था 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती'। इसमें वह अपना चरित्र लिखना चाहते थे। अन्तिम समय में इस ओर ध्यान हुआ था। 'राधा रानी', 'स्वर्णलता' आदि उन्हीं के अनुरोध से अनुवाद किए गए। 'चन्द्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' को अनुवाद कराके स्वयं शुद्ध किया था। 'राणा राजसिंह' को भी ऐसा ही करना चाहते थे। अनुवाद पूरा हो गया था, प्रथम परिच्छेद स्वयं नवीन लिखा, आगे कुछ शुद्ध किया था। नवीन उपन्यास 'हमीरहठ'—बड़े धूम से आरम्भ किया था, परन्तु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे। इनके पीछे इसके पूर्ण करने का भार स्वर्गीय लाला श्रीनिवासदास जी ने लिया और उनके परलोक-गत होने पर पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने; परन्तु संयोग की बात है कि ये भी कैलाशवासी हुए और कुछ भी न लिख सके यदि भारतेन्दु जी कुछ दिनों और भी जीवित रहते तो उपन्यासों से भाषा के भण्डार को भर देते क्योंकि अब उनकी रुचि इस ओर फिरी थी। यहाँ पर हमें यह भी लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि इनके ग्रन्थों में तीन प्रकार के ग्रन्थ हैं–(१) आदि से अन्त तक अपने लिखे, (२) कुछ अपना लिखा और कुछ दूसरों से लिखवाया ("नाटक" नामक पुस्तक में ऐसा ही है), (३) दूसरे से अनुवाद कराया स्वयं शुद्ध किया हुआ (गो महिमा, चन्द्रप्रभा-पूर्ण प्रकाश आदि)।

इनके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो उन्होंने अधूरे छोड़ थे और फिर औरों के द्वारा पूरे होकर छपे (दुर्लभबन्धु, सतीप्रताप, राजसिंह आदि)। एकाध ऐसे भी हैं जो उनके हुई नहीं हैं, धोखे से प्रकाशक ने उनके नाम से छाप दिया (माधुरी रूपक)। पहिले को छोड़ शेष ग्रन्थों की भाषा आदि में जो भिन्नता कहीं कहीं पाई जाती हैं वह स्वाभाविक हैं। 'चन्द्रावली नाटिका में अपने तरङ्ग के अनुसार कहीं खड़ी बोली और कहीं ब्रजभाषा लिखकर कवियों की स्वेच्छाचरिता प्रत्यक्ष कर दिया है। इसको पूरी पूरी व्रजभाषा में इनके मित्र राव श्रीकृष्णदेवशरण सिंह (राजा भरतपुर) ने किया था और संस्कृत अनुवाद पण्डित-गोपाल शास्त्री उपासनी ने। इस नाटिका के अभिनय की इनकी बड़ी इच्छा थी, परन्तु वह जी ही में रह गई। एक वेर लिखने के पीछे उसे ये पुनर्वार लिखते कभी नहीं थे और प्रायः प्रूफ के अतिरिक्त पुनरावलोकन भी नहीं करते थे, तथाच प्रूफ में भी प्रायः कापी से कम मिलाते थे, योंहीं प्रूफ पढ़ जाते थे। इन कारणों से भी कहीं कहीं कुछ भ्रम हो जाना सम्भव है। अस्तु, फिर प्रकृत विषय की ओर चलिए। धर्म सम्बन्धीय ग्रन्थों की ओर तो इनकी रुचि बचपन ही से थी; 'कार्तिक कर्म विधि', 'कार्तिक नैमित्तिक कर्म विधि', 'मार्गशीर्ष महिमा', 'वैशाख माहात्म्य', 'पुरुषोत्तम मास विधान', 'भक्ति सूत्र वैजयन्ती', 'तदीय सर्वस्व' आदि ग्रन्थ प्रमाण हैं। धर्म के साथ ऐतिहासिक खोज पर भी ध्यान था, ('वैष्णवसर्वस्व 'वल्लभीय सर्वस्व' आदि) इस इच्छा से कि नाभा जी के 'भक्तमाल' में जिन भक्तों का नाम छूटा है या जो उनके पीछे हुए हैं उनके चरित्र संग्रह हो जायँ, 'उत्तरार्ध भक्तमाल' बनाया। धर्म के विषय में उनके कैसे विचार थे इसका कुछ पता 'वैष्णवता और भारतवर्ष' से लग सकता है। धर्म विषयक जानकारी इनकी अगाध थी। एक वेर स्वयं कहते थे कि इस विषय पर यदि कोई सुनने वाला उपयुक्त पात्र मिले तो हम भारतीय धर्म के रहस्यों पर दो वर्ष तक अनवरत व्याख्यान दे सकते हैं। संस्कृत तथा भाषा के कवियों के जीवन चरित्र भी इन्हें बहुत विदित थे। सब धर्मों की नामावली तथा उनके शाखा प्रशाखा का वृक्ष, तथा सब

दर्शनों और सब सम्प्रदायों के ब्रह्म, ईश्वर, मोक्ष परलोक आदि मुख्य मुख्य विषयों पर मतामत का नकशा वह बनाते थे जो अधूरा अप्रकाशित रह गया। इस थोड़े ही लिखे ग्रन्थ से उन की जानकारी और विद्वत्ता का पूर्ण परिचय मिलता है। यह सब अधूरे और अप्रकाशित ग्रन्थ 'खड्ग-विलास प्रेस' संवन कर रहे हैं, सम्भव है कि किसी समय रसिक समाज का कौतूहल निवारण कर सकेंगे। इतिहास और पुरातत्वानुसन्धान की ओर इनका पूरा पूरा ध्यान रहा। जिस विषय को लिखा पूरी खोज और पूरे परिश्रम के साथ लिखा। 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'कवियों के जीवन चरित्रादि' इस के प्रमाण हैं। भाषारसिक डाक्टर ग्रिअर्सन ने इन के इस गुण पर मोहित होकर इन्हें स्पष्ट ही "The only critic of Northern India" लिखा है। इतिहास की ओर इनका इतना अधिक झुकाव था कि नाटक, कविता, तथा धर्म सम्बन्धी ग्रन्थादि में जहाँ देखिएगा कुछ न कुछ इसका लपेट अवश्य पाइएगा। कविता के विषय में हम ऊपर कई स्थलों पर बहुत कुछ लिख चुके हैं, यहाँ केवल इतना ही लिखना चाहते हैं कि *शृङ्गार-प्रधान भगवल्लीला के अतिरिक्त* इनका *उरझान जातीय* गीत की ओर अधिक था। यदि विचार कर देखा जाय तो क्या धर्म सम्बन्धी, क्या राजभक्ति (राजनैतिक), क्या नाटक क्या स्फुट प्रायः सभी चाल की कविता में जातीयता का अंश वर्तमान मिलेगा। हृदय का जोश उबला पड़ता है, विषाद की रेखा अलक्षित भाव से वर्तमान है, नित्य के ग्राम्य गीत (कजली, होली, आदि) में *भी जातीय सङ्गीत* प्रचलित करना चाहते थे। "काहे तू चौका लगाए जयचँदवा" "टूटे सोमनाथ के मन्दिर केहू लागै न गुहार" "भारत में मची है होरी","जुरि आए फाके मस्त होरी होय रही", आदि प्रमाण हैं। इस विषय में एक सूचना भी दी थी कि ऐसे जातीय सङ्गीत लोग बनावें, हम इनका संग्रह छापेंगे। उर्दू की स्फुट कविता के अतिरिक्त हास्यमय "क़ानून ताज़ीरात शौहर" बनाया, बँगला में स्फुट कविता के अतिरिक्त "बिनोदिनी" नामकी पुस्तिका बनाई थी, संस्कृत में "श्रीसीतावल्लभ स्तोत्र" आदि बनाए, अँग्रेज़ी में एज्यूकेशन कमीशन को साक्षी ग्रन्थ रूप में

लिखा (स्फुट कविता मेगजीन में छपी है) भक्तसर्वस्व गुजराती अक्षरों में छपा, गुजराती कविता इनकी बनाई "मानसोपायन" में छपी है, पञ्जाबी कविता "प्रेमतरङ्ग" में छपी है, महाराष्ट्री में "प्रेमयोगिनी" का एक अङ्क ही लिखा है, एक वर्ष कार्तिकस्नान शरीर की रुग्नता के कारण नहीं कर सके तो नित्य कुछ कविता बनाया उसका नाम "कार्तिकस्नान" रक्खा, राजनैतिक, सामाजिक, तथा स्फुट विषयों पर ग्रन्थ और लेख जो कुछ इन्हों ने लिखे थे और उनपर समय समय पर जो कुछ आन्दोलन होता रहा या उनका जो प्रभाव हुआ उनका वर्णन इस छोटे लेख में होना असम्भव है। हम तो इस विषय में इतना भी लिखना नहीं चाहते थे, किन्तु हमारे कई मित्रों ने आग्रह करके लिखवाया। वास्तव में यह विषय ऐसा है कि उनके प्रत्येक ग्रन्थों का पृथक पृथक वर्णन किया जाय कि वे कब बने, क्यों बने, कैसे बने, क्या उनका प्रभाव हुआ, कितने रूप उनके बदले, कितने संस्करण हुए और उनमें क्या परिवर्तन हुआ और अब किस रूप में हैं तब पाठकों को पूरा आनन्द आ सकता है। अस्तु हमने मित्रों के आग्रह से आभास मात्र दे दिया।

हिन्दी तथा वैष्णव परीक्षा।

हिन्दी की एक परीक्षा इन्हों ने प्रचलित की थी जो थोड़े ही दिन चलकर बन्द हो गई। इस पर एक रिपोर्ट इन्हों ने राजा शिवप्रसाद इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स् के नाम लिखी थी जो देखने योग्य है। उस रिपोर्ट से इनके हृदय का उमङ्ग और हिन्दी यूनीवर्सिटी बनाने की वासना तथा देशवासियों के निरुत्साह से उदासीनता प्रत्यक्ष झलकती है। एक परीक्षा वैष्णव ग्रन्थों की भी जारी करनी चाही परन्तु कुछ हुआ नहीं। उसकी सूचना यहाँ प्रकाशित होती है।

श्रीमद्वैष्णवग्रंथों में

———:o:———

परीक्षा

वैष्णवों के समाज ने निम्न लिखित पुस्तकों में तीन श्रेणियों में परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु और १५०) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषक नियत है जिन लोगों को परीक्षा देनी हो काशी में श्रीहरिश्चन्द्र गोकुलचन्द्र को लिखें नियत परीक्षा तो सं० १९३२ के वैशाख शुद्ध ३ से होगी पर बीच में जब जो परीक्षा देना चाहे दे सकता है ।

श्रेणी	श्रीनिम्बार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रविष्ट	वेदान्त रत्न मंजूषा, वेदान्त रत्न माला, सुरद्रुम मंजरी	यतीन्द्रमत दीपिका, शतदूषणी	वेदान्त रत्न माला, तत्व प्रकाशिका	षोडश ग्रन्थ, षोड़श वाद, संप्रदाय प्रदीप
प्रवीण	वेदान्त कौस्तुभ और प्रभा, षोड़शी रहस्य, पंच कालानुष्ठान	श्रुति सूत्र तात्पर्य्य निर्णय, प्रस्थान त्रय का भाष्य	भाष्य सुधा, न्यायामृत	विद्वन्मंडन, स्वर्ण सूत्र, निबन्ध आवर्ण भंग वाग्रहस्त, पंडित करभिंदिपाल, बहिर्मुख मुख मर्द्दन
पारङ्गत	अध्यास गिरिवज्र सेतुका, जान्हवी मुक्तावली	वेदान्ताचार्य्य का लघु भाष्य, वृहच्छतदूषणी	सहस्र दूषिणी	अणु भाष्य, भाष्य प्रदीप, भाष्य प्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव *

* यदि रश्मि में परीक्षा दें तो १००) रु० पारितोषिक मिले ।

भारतेन्दु की पदवी ।

———:o:———

इनके गुणों से मोहित होकर इनका कैसा कुछ मान देशीय और विदेशीय सज्जन इनके सामने तथा इनके पीछे करते थे यह लिखने की आवश्यकता नहीं । हम केवल दो चार बात इस विषय में लिख देना चाहते हैं । सन् १८८० ई० के 'सारसुधानिधि' में एक लेख छपा कि इन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी देना चाहिए, इसको एक स्वर से सारे देश ने स्वीकार कर लिया और सब लोग इन्हें भारतेन्दु लिखने लगे, यहाँ तक कि भारतेन्दु जी इनका उपनाम ही हो गया । इस पदवी को न केवल इस देश के लोगों ही ने स्वीकार किया; वरञ्च योरप के लोग भी बराबर इन्हें भारतेन्दु लिखने लगे । विलायत के विद्वान् इन्हें मुक्तकंठ से Poet Laureate of Northern India (उत्तरीय भारत के राजकवि) मानते और लिखते थे । एज्यूकेशन कमीशन के साक्षी नियुक्त हुए । लार्ड रिपन के समय में राजा शिवप्रसाद से बिगड़ने पर हज़ारों हस्ताक्षर से गवर्न्मेन्ट की सेवा में मेमोरियल गया था कि इनको लेजिस्लेटिव काउन्सिल का मेम्बर चुनना चाहिए । बलिया निवासियों ने इनके बनाए 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक का अभिनय किया था, उस समय इन्हें भी बुलाया था । बलिया में इनका बड़ा सतकार हुआ था, इनका स्वागत धूमधाम से किया गया था, ऐड्रेस दिया गया था । इनके इस सम्मान में स्वयँ ज़िलाधीश राबर्ट्स साहब भी सम्मिलित थे । इनकी बीमारियों पर कितने ही स्थानों पर प्रार्थनाएँ की गई हैं, आरोग्य होने पर कितने ही जलसे हुए हैं, कितने 'क़सीदे' बने हैं और ऐसी ही कितनी ही बातें हैं ।

———:o:———

नए चाल के पत्र ।

हिन्दी में कितने ही चाल के पत्र, कितनी ही चाल की नई बातें इन्होंने चलाईं । प्रतिवर्ष एक छोटी सी सादी नोट बुक

छपवाकर अपने मित्रों में बाँटते थे जिस पर वर्ष की अँग्रेज़ी जन्त्री रहती थी और "हरिश्चन्द्र को न भूलिए", "Forget me not", छपा रहता, तथा और भी तरह तरह के प्रेम तथा उपदेश वाक्य छपे रहते थे । जब से इन्होंने १०० वर्ष की जन्त्री (वर्ष मालिका) छपवा कर प्रकाशित की तब से इसका छपना बन्द हुआ । इस नोट बुक की कमिश्नर कारमाइकल साहब ने बड़ी सराहना की है । पत्रों के लिये प्रत्येक बार के अनुसार जुदा जुदा रङ्ग के काग़ज़ पर जुदा जुदा शीर्षक छापकर काम में लाते थे, यथा—

रविवार को गुलाबी काग़ज़ पर:—

"भक्त कमल दिवाकराय नमः"

"मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहू नाहिँ बिश्राम ।
प्रफुलित होत न कमल जिमि बिनु रवि उदय ललाम ॥"

सोमवार को श्वेत काग़ज़ पर—

"श्रीकृष्णचन्द्राय नमः"

"बन्धुन के पत्रहिँ कहत अर्ध मिलन सब कोय ।
आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलनो होय ॥"

सोमवार का यह दोहा भी छपवाया था——

"समिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज ।
श्री मुखचन्द्र चकोर श्री, कृष्णचन्द्र महराज ॥"

मङ्गल को लाल काग़ज़ पर—

"श्रीवृन्दावन सार्वभौमाय नमः"

"मङ्गलं भगवान विष्णुं मङ्गलं गरुड़ध्वजम् ।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षं मङ्गलायतनं हरिं ॥"

बुध को हरे काग़ज़ पर—

"बुधराधित चरणाय नमः"

"बुध जन दर्पण में लखत दृष्ट वस्तु को चित्र ।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र ॥"

गुरुवार को पीले काग़ज़ पर—

"श्रीगुरु गोविन्दायनमः"

"आशा अमृत पात्र प्रिय विरहातप हित छत्र।
बचन चित्र अवलम्बप्रद कारज साधक पत्र॥"

शुक्रवार को सफ़ेद काग़ज़ पर—

"कविकीर्ति यशसे नमः"

"दूर रहत करलेत आवरन हरत रखि पास।
जानत अन्तर भेद जिय पत्र पथिक रसरास॥"

عقدہ کشاے حال دل دوستدار ہے
تقریر کی تصویر ہے ھجرت میں یار ہے

शनिवार को नीले काग़ज़ पर—

"श्रीकृष्णायनमः"

"और काज सनि लिखन मैं होइ न लेखनि मन्द।
मिलै पत्र उत्तर अवसि यह विनवत हरिचन्द॥"

इनके अतिरिक्त और भी प्रेम तथा उपदेश वाक्य छपे हुए काग़ज़ों पर पत्र लिखते थे। इनके सिद्धान्त वाक्य अर्थात् माटो निम्नलिखित थे—

(१) "यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः"
(२) "भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम्"
(३) "The Love is heaven and heaven is love"

इनके सिद्धान्त चिन्ह अर्थात् मोनोग्राम यह थे—

(१)

(१) अँग्रेज़ी एच (H) नाम का पहिला अक्षर, एच में जो चार पाई हैं वह चार खम्भे अर्थात् चौखम्भा. एच के ऊपर त्रिशूल अर्थात् काशी, श्री हरिः अर्थात् भगवत् नाम भी और श्रीहरिः +

· चन्द्र = श्री हरिश्चन्द्र, चन्द्रमा के नीचे तारा है वहीं फारसी का ह अर्थात् इनके नाम का पहिला अक्षर।

लिफ़ाफ़ों के ऊपर पत्र के आशय को प्रगट करने वाले वाक्यों के 'वेफ़र' छपवा रक्खे थे, जिन्हें यथोचित साट देते थे। इन पर "उत्तर शीघ्र" "ज़रूरी", "प्रेम" आदि वाक्य छपे थे। ऐसी कितनी ही तबीयतदारी की बातें रात दिन हुआ करती थीं।

——:o:——

स्वभाव ।

स्वभाव इनका अत्यन्त कोमल था, किसी का दुःख देख न सकते थे। सदा प्रसन्न रहते थे। क्रोध कभी न करते। परन्तु जो कभी क्रोध आ जाता तो उसका ठिकाना भी न था। जिन महाराज काशिराज का इन पर इतना स्नेह था और जिन पर ये पूर्ण भक्ति रखते थे, तथाच जिनसे इन्हें बहुत कुछ आर्थिक सहायता मिलती थी, उनसे एक बात पर बिगड़ गए और फिर यावज्जीवन उनके पास न गए। महारानी विक्टोरिया के छोटे बेटे ड्यूक आफ़ आलबेनी की अकाल मृत्यु पर इन्हों ने शोक समाज करना चाहा। साहब मैजिस्ट्रेट से टाउनहाल माँगा, उन्हों ने आज्ञा दी, सभा की सूचना छपकर बँट गई, परन्तु दिन के दिन राजा शिवप्रसाद ने साहब मैजिस्ट्रेट से न जाने क्या कहा सुना कि उन्हों ने सभा रोक दी और टाउनहाल देना अस्वीकार किया; लोग आ आकर फिर गए, लोगों को बड़ा क्रोध हुआ और दूसरे दिन बनारस-कालिज में कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने एक कमेटी की जिसमें निश्चय हुआ कि शोक-समाज कालिज में हो, मैजिस्ट्रेट की कार्रवाई की रिपोर्ट गवर्नमेन्ट में की जाय और राजा शिवप्रसाद को किसी सभा सोसाइटी में न बुलाया जाय। साहब मैजिस्ट्रेट को समाचार मिला, उन्हों ने अपनी भूल स्वीकार की और आग्रह करके सभा टाउनहाल में कराई। राजा साहब बिना निमन्त्रण भी उस सभा में आए और उन्हों ने कुछ कहना चाहा, परन्तु लोगों ने इतना कोलाहल किया कि वह कुछ कह न सके। इस पर चिढ़कर राजा साहब ने काशिराज से इनको पत्र लिखवाया कि आपने जो राजा साहब का अपमान किया वह मानो हमारा अपमान हुआ, इसका कारण क्या है? महाराज का अदब करके

इसका उत्तर तो कुछ न लिखा, परन्तु जुबानी कहला भेजा कि महाराज के लिये जैसे हम वैसे राजा साहब, हमारे अपमान से महाराज ने अपना अपमान न माना और राजा साहब के अपमान को अपना समझा, तो अब हम आपके दरबार में कभी न आवेंगे। यद्यपि ये अत्यन्त ही नम्र स्वभाव थे और अभिमान का लेश भी न था, परन्तु जो कोई इनसे अभिमान करता तो ये सहन न कर सकते। शील इनका सीमा से बढ़ा हुआ था, कोई कितनी भी हानि करै ये कभी कुछ न कह सकते और न उसको आने से रोकते। एक महापुरुष प्रायः चीजें उठा ले जाया करते। जब पकड़े जाते तब दुर्गति करके इनके अनुज बाबू गोकुलचन्द्र ड्योढ़ी बन्द कर देते। परन्तु जब भारतेन्दु जी बाहर से आने लगते यह साथ ही चले आते। यों ही बीसों बेर हुआ, अन्त में भारतेन्दु जी ने भाई से कहा कि "भैया, तुम इनकी ड्योढ़ी न बन्द करो, यह शख्स कद्र करने योग्य है, इस की बेहयाई ऐसी है कि इसे कलकत्ता के 'अजायबखाने' में रखना चाहिये"। निदान फिर उनके लिये अविमुक्तद्वार ही रहा। इन्हों ने अपने स्वभाव को एक कविता में स्वयं कहा है, उसी को हम उद्धृत करते हैं इस पर विचार करने से उनकी प्रकृति तथा चरित्र का पूरा पता लग सकता है—

"सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के ॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह नेही नेह के,
दिवाने सदा सूरत-निवानी के।
सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के ॥"

हमारे इस लेख में ऊपरोक्त स्वभावों का बहुत कुछ परिचय पाठक पाचुके हैं। गुनीजन की सेवा, चतुरों का सम्मान, कवियों की मित्रता, नम्रता तथा उग्रता, लापरवाही आदि गुणों के विषय

में कुछ विशेष कहना व्यर्थ है। अब केवल उक्त पद के अन्तिम भाग की समालोचना शेष है। "दिवाने सदा सूरत निवानी के" यही एक विषय है जिस पर तीव्र आलोचना हो सकती है और इसी को कोई भूषण तथा कोई दूषण की दृष्टि से देखते हैं, तथाच इनके जीवन चरित्र रचना में यही एक प्रधान बाधक विषय रहा। वास्तव में ऐसा कोई सभ्य देश नहीं है जो सौन्दर्योपासक न हो, परन्तु इसकी मात्रा का कुछ बढ़ जाना ही भूषण से दूषण तथा मनुष्य को कष्टकर होता है, और गुलाब में काँटे की तरह खटकता है। इस विषय को सोचकर उनके प्रेमी उनके चरित्र सङ्कलन में कुछ संकुचित होते हैं, परन्तु उस महानुभाव उदार चरित्र को इसका कुछ भी सङ्कोच न था, क्योंकि शुद्ध हृदय, शुद्ध प्रेम-जो जी में आया सच्चे जी से किया। हमलोग आगा पीछा जितना चाहें करें, परन्तु उन्होंने जैसे ही यहाँ इन वाक्यों को साभिमान कहा है, वैसे ही इसके भीतर जो कुछ दुखदायकता वा दूषण है उसे भी इस दोहे में स्पष्ट कह दिया है—

"जगत जाल में नित बंध्यो पर्‌यो नारि के फन्द।

मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचन्द ॥"

अस्तु, इस विषय में हम केवल एक घटना का उल्लेख करके इसको यहीं छोड़ेंगे। एक दिन अपने कुछ अन्तरङ्ग मित्रों के साथ बैठे थे और एक वारविलासिनी भी वर्तमान थी। उसने कुछ ऐसे हावभाव कटाक्ष से देखा कि इन्हें कुछ नवीन भाव स्फुरन हुआ और तुरन्त एक कविता बनाई, और उसे उन मित्रों को सुनाकर कहा कि "हम इन सभों का सहवास विशेष कर इसीलिये करते हैं। कहिए यह सच्चा मज़मून कैसे लब्ध हो सकता था?" निदान जो कुछ हो, उनके इस आचरण का भला या बुरा फल उन्हीं के लिये था, दूसरों को उससे कोई हानि लाभ नहीं; और वह संसार को क्या समझते थे, और उनके आचरण किस अभिप्राय के होते थे इसे उन्हीं के वाक्य कुछ स्पष्ट कर सकते हैं। "प्रेमयोगिनी" के नान्दी-पाठ में कहते हैं—

"जिन तृन सम किय जानि जिय, कठिन जगत जंजाल ।
जयतु सदा सो ग्रन्थ कवि, प्रेमजोगिनी वाल ॥"

आगे चलकर उसी नाटिका में सूत्रधार कहता है—

"क्या सारे संसार के लोग सुखी रहैं और हमलोगों का परमबन्धु, पिता, मित्र, पुत्र, सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एक मात्र मूर्ति, सौजन्य का एक मात्र पात्र, भारत का एक मात्र हित, हिन्दी का एक मात्र जनक, भाषा नाटकों का एक मात्र जीवनदाता, हरिश्चन्द्र ही दुखी हो ? (नेत्र में जल भरकर) हा सज्जन शिरोमणे ! कुछ चिन्ता नहीं; तेरा तो बाना है कि कितना भी दुःख हो उसे सुख ही मानना' ; लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत से विपरीत गति चलके तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है । क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अङ्क में रखकर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निन्दा करते हैं और तू संसारी वैभव से सुचित नहीं है; तुझे इससे क्या; प्रेमी लोग जो तेरे हैं और तू जिन्हें सरवस है, वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवन पद्धति समझेंगे । (नेत्र से आँसू गिरते हैं) मित्र ! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनो भूल जाते हो, तुम्हें इनकी निन्दा से क्या ? इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो ? स्मरण रक्खो ये कीड़े ऐसे ही रहैंगे और तुम लोकबहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके विहार करोगे । क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—'कहैंगे सबैही नैन नीर भरि भरि पाछें प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जाँयगी' मित्र ! मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है ।"

अस्तु, अब इस विषय में अधिक न लिखकर इसका विचार हम सहृदय पाठकों ही पर छोड़ते हैं। अब अन्तिम पद पर "सरवस रसिक के, सुदास दास प्रेमिनके सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के" ध्यान दीजिए जिनका यह साभिमान वाक्य है कि—

"चन्द टरै सूरज टरै टरैं जगत के नेम ।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को टरै न अविचल प्रेम ॥"

उस की रसिकता और प्रेम का क्या कहना है। इनका हृदय प्रेम-रङ्ग से रँगा हुआ था। प्रायः देखा गया है कि जिस समय उनके हृदय में प्रेम का आवेश आता था, देहानुसन्धान न रह जाता उस प्रेमावस्था में कितने पदार्थ लोग इनके सामने से उठा ले गए हैं, उन्हें कुछ भी सुधि नहीं। आहा! सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के, इसमें कितनी धृष्टता और कितना अद्वय भरा हुआ है! इसे लिखने का अधिकार उसी को हो सकता है जो पुकारकर यह कहता हो–

"श्रीराधा माधव युगल प्रेम रस का अपने को मस्त बना,
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा।
इतबार न हो तो देख न ले क्या हरीचन्द का हाल हुआ;
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा॥"

निदान इनकी रसिकता, अनन्यता, तथा भगवद्भक्ति इनके प्रत्येक पद और ग्रन्थ से झलकती है तथाच इस विषय में ऊपर भी लिखा जा चुका है, अतः यहाँ इतने ही पर विश्राम लेते हैं।

——:o:——

सन्तति।

सन्तति इन्हें तीन हुईं, दो पुत्र और एक कन्या। पुत्र दोनो शैशवावस्था ही में जाते रहे, कन्या के ईश्वरानुग्रह से पाँच पुत्र विद्यमान हैं परन्तु आप स्वर्ग गामिनी हो गईं।

——:o:——

रोग।

भारत गौरव, हिन्दूपति, मेवाड़ नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर अत्यन्त स्नेह था और वह बहुत काल से इनसे मिलने को उत्सुक थे। अतः उनके आग्रह और श्रीनाथ जी के दर्शन की लालसा से सन् १८८२ ई० में उदयपुर गए। वहाँ से लौटने पर बीमार

हुए, श्वास कास और ज्वर का वेग हुआ, जीवन संशय हो गया। इसी बीच एक दिन बड़े ज़ोर से हैज़ा हुआ, सर्वांङ्ग ऐंठ गया, घड़ी साइत का ठिकाना न रहा; परन्तु अभी परमेश्वर को इनसे कुछ कार्य कराने शेष थे, इस समय कराल काल से छुट्टी पाई, इसी समय "नाटक" नामक ग्रन्थ की पूर्ति की, उसके समर्पण में स्वयं लिखते हैं—

"नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य जीवन का अन्तिम अङ्क हो चुकता। किन्तु न जाने क्या सोचकर और किस पर अनुग्रह करके उसकी आज्ञा नहीं हुई...................... यद्यपि सँसार के कुरोगों से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही, किन्तु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा—हरिश्चन्द्र—......

रोग पूरा पूरा निवृत्त न होने पाया, चलने फिरने लगे कि फिर शरीर की चिन्ता कौन करता है, अविरल लिखने पढ़ने का परिश्रम चलने लगा। योंही कुछ दिनों लस्टम फस्टम चले, कि मरने से एक वर्ष पहिले श्वास और खाँसी का वेग बढ़ा; समझा कि दमा हो गया है। शरीर नित्य नित्य क्षीण होने लगा, यहाँ तक कि थोड़े दिन पहिले चलने फिरने की शक्ति इतनी घट गई कि पालकी पर बाहर निकलते थे। लोग दमा के धोखे में रह गए, वास्तव में क्षय-रोग हो गया था। अधिक पान खाने के कारण कफ के साथ रक्त का तो पता लगता न था, केवल श्वास कास की दवा होती थी। निदान अन्तिम समय बहुत निकट आने लगा। मरने से महीना डेढ़ महीना पहिले इनका हृदय कुछ शाँति रस की ओर अधिक फिर गया था, "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" की अन्तिम संख्याओं में प्रकाशित शान्तरस की कविता सब इसी समय की बनी हुई हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, निम्न लिखित पद के पीछे कोई कविता नहीं की—

"डङ्का कूच का बज रहा मुसाफ़िर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पन्थी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचन्द हरि पद बिनु नहिं तौ रहि जैहौ मुँह बाई॥"

इसी समय प्रायः नित्य ही, वह पद्माकर कवि का निम्न लिखित कवित्त कहते और घण्टों तक रोते रह जाते थे—

"व्याध हूँ तें बिहद, असाधु हौं अजामिल लौं,
    ग्राह तें गुनाही, कहौ तिन में गिनाओगे।
स्योरी हौं, न शूद्र हौं, न केवट कहूँ को त्यों,
    न गौतमी तिया हौं जापैं पग धरि आओगे॥
राम सों कहत पद्माकर पुकारि तुम,
    मेरे महा पापन को पार हूँ न पाओगे।
झूठा ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
    (नाथ !) हौं तो साँचो हूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे"॥

——:o:——

मृत्यु।

धीरे धीरे, सन् १८८४ समाप्त हुआ। सन् १८८५ आया। दूसरी जनवरी को एकाएक भयानक ज्वर आया, ज्वर आठ पहर भोगकर उतरा कि पसली में दर्द उठा, इस दर्द में डाक्तर लोग जीवन का संशय करते थे, परन्तु राम राम करते यह दर्द दूर हुआ, फिर आशा हुई। तीसरे दिन खाँसी बड़े ज़ोर से आरम्भ हुई, बलग़म का बड़ा वेग रहा, कफ़ में रुधिर दिखाई पड़ा, बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु इससे भी छुटकारा मिला। ता० ६ जनवरी को सवेरे शरीर बहुत स्वस्थ रहा। ज़नाने से मज़दूरिन खबर पूछने आई, आपने हँसकर कहा "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है; पहिले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है"। उसी दिन दो पहर को एक दस्त आया, काला मल गिरा, उसी समय से कुछ श्वास बढ़ा। बस उसी समय से उन्हों ने संसार की ओर से मन को फेरा, घर का कोई सामने आता तो मुँह फेर लेते। दो बजे दिन को अपने भ्रातुष्पुत्र कृष्णचन्द्र को बुलाया, कहा अच्छे कपड़े

पहिन कर आओ; कपड़े पहिनकर आने पर कहा "नहीं इससे भी अच्छे कपड़े पहिन आओ" तुरन्त आज्ञा पालन हुई; आप आराम कुर्सी पर लेटे और बच्चे को गोद में बिठाकर अंगूर खिलाए, फिर दोनों हाथ उसके सिर पर रख कुछ देर तक ध्यानावस्थित रहे और तब उसे बिदाकर कहा "जाओ खेलो" । इसके पीछे सांसारिक माया से कुछ वास्ता न रक्खा । श्वास बढ़ता ही गया, बेचैनी से नींद आने की इच्छा वैद्य डाक्टरों से प्रगट करते रहे । धीरे धीरे रात को नौ बज गए—समय आन पहुँचा-एकाएकी पुकार उठे "श्री कृष्ण ! राधाकृष्ण ! हे राम ! आते हैं, मुख दिखलाओ" । कण्ठ कुछ रुकने लगा, कुछ दोहा सा कहा, परन्तु स्पष्ट न समझाई दिया; केवल इतना समझ में आया "श्री कृष्ण........सहित स्वामिनी"—बस गरदन झुक गई, पौने दस बजे इस भारत का मुखोज्वलकारी भारतेन्दु अस्त हो गया, चारो ओर अन्धकार छा गया । बस, लेखनी अब उस दुःखमय कथा को लिख नहीं सकती ।

शोक प्रकाश ।

भारतवर्ष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक हाहाकार मच गया । काशी का तो कहना ही क्या था, पेशावर से लेकर नैपाल तक और कलकत्ते से लेकर बम्बई तक सैकड़ों ही स्थानों में शोक समाज हुए । शोक प्रकाशक तार और पत्रों का ढेर लग गया, कितनेही समाचार पत्रों की ओर से अनियत पत्र प्रकाशित हुए, कितने ही शोकपत्र जन साधारण की ओर से वितरित हुए । हिन्दी समाचार पत्रों का तो कहना ही क्या था, महीनों तक कितनों ही ने शोक चिन्ह धारण किया; कितने ही शोक लेख, कितनी ही शोक कविता, कितनी ही शोक समस्या छपीं, कितनेही चित्र छपे कितने ही जीवनचरित्र छपे । अँग्रेज़ी, उर्दू, बँगला, गुजराती, महाराष्ट्री के कोई पत्र नहीं थे जिन्होंने हार्दिक शोक प्रकाश न किया हो । चारो ओर कितने ही दिनों तक शोक ही शोक छाया रहा । भारतवर्ष में बहुतेरे बड़े बड़े लोग मरे और बहुतकुछ लोगों ने किया, परन्तु ऐसा

हार्दिक शोक आज तक किसी के लिये प्रकाशित नहीं हुआ। शत्रु भी इनकी मृत्यु पर अश्रुवर्षण करते थे, मित्रों की कौन कहै। राजा शिवप्रसाद से आजन्म इन से झगड़ा चला, परन्तु जिस समय वह मातमपुर्सी को आए थे आँखों में आँसू भरे हुए थे, और कहते थे कि "हाय ! हमारा मुक़ाबिला करने वाला उठ गया!" पंडितलोग यह कहकर रोते थे कि क्या फिर वैश्यकुल में कोई ऐसा जन्मैगा जिनसे हमलोग धर्मशास्त्र की व्यवस्था पर सलाह लेने जाँयगे! निदान इनका शोक अकथनीय था। इस विषय में लाहौर के "मित्रविलास" ने जो कुछ लिखा था उसका कुछ अंश हम प्रकाशित किए देते हैं, उसीसे उस समय के शोक का पता लग जायगा—

"हाय हरिश्चन्द्र! तू हमलोगों को छोड़ जायगा इस बात का तो किसी को ध्यान मात्र भी न था, और अभी तक भी तेरा नाम स्मरण करके यह निश्चय नहीं होता है कि क़लम दावात लिए, 'वस्ता' सामने धरे उसमें से काग़ज़ रूपी बिखड़े रत्नों को हास्य-मुख के साथ एक लड़ी में पिरो रहा है और सोच रहा है कि किस भाग्यवान की झोली इससे भरूँ! 'गोदड़ी में लाल' सुना करते थे, परन्तु देखे तेरे ही पास। हा! अब कौन उनको परख सकैगा और कौन उनकी माला बनावैगा?

"प्यारे हरिश्चन्द्र! काशी में, जहाँ और बड़े बड़े तीर्थ हैं, वहाँ तू भी एक तीर्थ स्वरूप ही था। काशी जी में जाकर और तीर्थ पीछे स्मरण होते हैं, तू पहिले मन में स्थान कर लेता था। और तीर्थों पर पाधा पुरोहित यात्रियों को प्रसन्न करने, अपनी नामवरी कमाने वा दान दक्षिणा देने को यात्री लोग जाते हैं, पर तेरे पास सब भिक्षा ही के लिये आते थे, और किसकी भिक्षा? प्रेम की भिक्षा दर्शन की भिक्षा, सत्परामर्श की भिक्षा! तेरे दर्वाज़े से कभी कोई विमुख नहीं गया; तू इस संसार मे इस लिये नहीं आया था कि अपना कुछ बना जावे, किन्तु इस लिये आया था कि बना बनाया भी दूसरों को सौंप दे और उनका घर भरे। तेरे चरित्रों से स्पष्ट दिखाई देता था कि तू हर घड़ी इस संसार को छोड़ने ही का ध्यान रखता था। और इसी लिये किसी संसारी लोगों की दृष्टि में तेरी अपनी वस्तु की तूने कभी रत्तीमात्र भी पर्वा न की। यश कमाने तू

आया था, वह तुझसा दूसरा कौन कमावैगा । शेष सब पदार्थों का आना जाना तूने तुल्य और एक सा समझ रक्खा था ।

"प्यारे हरिश्चन्द्र ! आप के यह संसार त्यागने पर लोग शोक प्रकाश कर रहे हैं, । परन्तु हम में यह सामर्थ्य नहीं है । आप के हमें छोड़ कर चले जाने से जो कुछ हम में बीत रही है, हम जानते नहीं कि तुमें किस नाम से पुकारें, हमें जो कुछ शोक है वह ऐसा पर्दों के पर्दों में छिपा हुआ है कि उस का प्रकाश करना हमारे लिये असम्भव है । यह महाशय भाषा के उत्तम कवि थे इस प्रकार के वाक्य लिख कर जो लोग आप के बिछोड़े पर शोक प्रगट करते हैं, वह हमारे कलेजे के टुकड़े उड़ाते हैं, वह हमारे प्यारे हरिश्चन्द्र की हतक करते हैं, हम से यह सहन नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि जो लोग प्यारे भारतेन्दु के विषय में इतनाहीं जानते हैं वह चुप रहैं ऐसे फीके वाक्य कह कर हरिश्चन्द्र और भारतेन्दु के चकोरों को दुख न दें ।"

इन के स्मारक-चिन्ह स्थापन की चर्चा चारों ओर होने लगी, परन्तु जैसा हतभाग्य यह देश है वैसा कोई देश नहीं, चार दिन का हौसला यहाँ होता है, फिर तो कोई ध्यान भी नहीं रहता । फिर भी यह हरिश्चन्द्र ही थे कि जिन के स्मारक की कुछ चर्चा तो हुई नाम मात्र के लिये कानपूर और अलीगढ़ भाषासम्वर्धिनी सभा में "हरिश्चन्द्र पुस्तकालय" स्थापित हुए परन्तु वास्तविक स्मारक उदयपुर में "हरिश्चन्द्रार्य विद्यालय" हुआ जो आज तक वर्तमान है और जिस में कुछ द्रव्य भी सञ्चित है कि जिस से उसके चले जाने की आशा है । काशी में इन का स्थापित जो स्कूल है वह उस समय "चौक स्कूल" कहलाता था, परन्तु इन की मृत्यु पर उसके पारितोषिक वितरण के उत्सव में राजा शिवप्रसाद ने प्रस्ताव किया कि 'इस स्कूल का नाम अब से इस के संस्थापक बाबू हरिश्चन्द्र के स्मारक स्वरूप "हरिश्चन्द्र स्कूल" होना चाहिए। सभापति मिस्टर ऐडम्स (कलेक्टर) ने इस का अनुमोदन किया और तब से यह स्कूल "हरिश्चन्द्र एडेड-स्कूल" कहलाता है। हिन्दी समाचार पत्रों की ओर से "मित्रविलास" के प्रस्ताव पर इन के नाम से "हरिश्चन्द्र सम्वत्" चला। उदयपुर में कई वर्ष तक

इनके श्राद्ध समय में "हरिश्चन्द्र सभा" होती रही, जिसमें इनके विषय में भाषा तथा संस्कृत कविता पढ़ी जाती थीं। दर्नाहा जिला गया से कुछ दिनों तक "हरिश्चन्द्र कौमुदी" मासिक पत्रिका निकलती थी। "खड्गविलास प्रेस" बाँकीपुर से "हरिश्चन्द्र कला" प्रकाशित हुई, जिसमें पहिले तो उनके प्रायः सब ग्रन्थ शृङ्खला के साथ छपे, फिर उन के संग्रहीत तथा प्रणीत ग्रन्थ छपते रहे। हिन्दी समाचार पत्रों में प्रकाशित शोक प्रकाश तथा और शोक कविताओं के संग्रह का "हरिश्चन्द्र शोकावली" नामक एक अच्छा ग्रन्थ छपा। लखनऊ से एक सौ वर्ष की जन्त्री "भारतेन्दु शताब्दी" नामक छपी और सन् १८८८ ई० में कविवर श्रीधर पाठक जी ने "श्रीहरिश्चन्द्राष्टक" प्रकाशित किया, जिसके अन्तिम छप्पय के साथ हम भी इस प्रबन्ध को समाप्त करते हैं।

"जबलौं भारतभूमि मध्य आरजकुल बासा।
जबलौं आरजधर्म माहिं आरज बिश्वासा॥
जबलौं गुन-आगरी नागरी आरजबानी।
जबलौं आरजबानी के आरज अभिमानी॥
तबलौं यह तुम्हरो नाम थिर, चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चन्द सूर सम सुमिरिहैं हरिचन्दहु सज्जन सकल॥"

ग्रन्थों की सूची

नाटक १

१ प्रवास नाटक (अपूर्ण, अप्रकाशित)
२ सत्य हरिश्चन्द्र
३ मुद्राराक्षस
४ विद्या सुन्दर
५ धनञ्जय विजय
६ चन्द्रावली
७ कर्पूर मञ्जरी
८ नीलदेवी
९ भारत दुर्दशा
१० भारत जननी
११ पाषण्ड विडम्बन
१२ वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
१३ अंधेर नगरी
१४ विषस्य विषमौषधम्
१५ प्रेम योगिनी (अपूर्ण)
१६ दुर्लभ बन्धु (अपूर्ण)
१७ सती प्रताप (अपूर्ण)
१८ नव मल्लिका (अपूर्ण, अप्रकाशित)
१९ रत्नावली (अपूर्ण)
२० मृच्छकटिक (अपूर्ण, अप्रकाशित, अप्राप्य)

१ (नम्बर १९, २० बहुत कम लिखे गए)

आख्यायिका वा उपन्यास २

१ रामलीला (गद्य पद्य)
२ हमीरहठ (असम्पूर्ण अप्रकाशित)
३ राजसिंह (अपूर्ण)
४ एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती (अपूर्ण)
५ सुलोचना
६ मदालसोपाख्यान
७ शीलवती
८ सावित्री चरित्र

काव्य ३

१ गीत गोविन्दानन्द (गाने के पद्य)
२ प्रेम माधुरी (शृङ्गार रस के कवित्त सवैया)
३ प्रेमफुलवारी (गाने के पद्य)
४ प्रेममालिका (तथैव)
५ प्रेमप्रलाप (तथैव)
६ प्रेमतरङ्ग (तथैव)

२ (सुलोचना और सावित्री चरित्र में सन्देह है)

३ (नम्बर १०, ११, १२, २०, २३, २९, २६, २७, २८, २९. यह सब बहुत छोटे काव्य हैं नम्बर १४, २२, २४ हरिश्चन्द्र कला के सम्पादक ने संग्रह किया है।

स्तोत्र ४

अनुवाद वा टीका ५

परिहास ६

४ (यह सब छोटे छोटे काव्य हैं)
५ (नम्बर ४, ५, ७, बहुत ही छोटे हैं.)

धर्म सम्बन्धीय इतिहास तथा चिन्हादि वर्णन

६ (प्रायः यह सभी छोटे छोटे लेख वा काव्य हैं)

माहात्म्य

ऐतिहासिक ७

राजभक्ति सूचक ८

स्फुट ग्रन्थ, लेख तथा व्याख्यान आदि

---

७ (जीवन चरित्रों में कई एक बहुत छोटे हैं)

८ (नम्बर ३, ६, ७, ८, १२, १३, बहुत छोटे हैं)

घात से मृत्यु १६ त्योहार १७ हाली १८ बसन्त १९ लेवी प्राण लेवी २० गर्सिया [कविवचनसुधा के लेख तथा स्फुट कविता का पूरा पता नहीं मिला। जिन लेखों पर [?] चिन्ह है उनमें सन्देह है कि इन के लिखे हैं या दूसरों के।]

सम्पादित. सङ्गृहीत वा उत्साह देकर बनवाए

(जो जो ग्रन्थ स्मरण आए या उत्तम लेख चन्द्रिका, बालाबोधिनी में मिले लिखे गए हैं कविवचनसुधा में प्रकाशित ग्रंथ या लेखों का पता नहीं मिला(